कलयुग की महाप्रलय

लेखक

विजय मेहता

१९५९

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन
मालीवाड़ा दिल्ली ।

मूल्य : दो रुपया

मुद्रक
कामिनी प्रिंटर्ज़,
बल्लीमारान, दिल्ली ।

दो शब्द

यह छोटा सा उपन्यास श्री विजय मेहता का दूसरा प्रयास है। विचारों की दृष्टि से उपन्यास बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, जिस में विश्व-शांति और मानवता के उच्चादर्शों को विचार की प्रधान पृष्ठभूमि बनाकर लेखक चला है और लेखक ने अपने विचारों को बहुत सुन्दरता से व्यक्त किया है। भविष्य में मैं इस नई प्रतिभा से इससे भी सुन्दर, प्रौढ़ और कलात्मक रचना की आशा करता हूँ।

२४-३-५६ यज्ञदत्त शर्मा

लेखकीय

'कलयुग' की महाप्रलय आपके सामने है। यह मेरा दूसरा उपन्यास है। पहला उपन्यास "आवरण हटा" अग्रगामी पत्रिका में धारावाहिक रूप में छप रहा है।

यह वर्तमान युग का चित्रण है। मैं कहाँ तक इस युग को भाँपने में सफल हुआ हूँ, यह बताना सम्भव नहीं। क्योंकि जब तक एक सदी या युग की धूल उड़ती व बिखरती रहती है तो कलाकार उसका एक धुँधला-सा ही चित्र खींचने में समर्थ होता है। जब वह धूल भली प्रकार बैठ जाती है तब हमें पता चलता है कि वे कौनसी वस्तुएँ थीं जिनकी धुरी पर उस युग का पहिया चल रहा था। जब वातावरण शान्त हो जाता है तो उस युग की आस्था, अभिलाषा, सफलता, असफलता, भाव, विचार, आशा, निराशा, महान् संघर्ष व उनके परिणाम निखर कर सामने आते हैं। यह सब समय ही बतायेगा ?

इस उपन्यास के विचारों में बीसवीं सदी के कुछ विद्वानों के विचारों का समावेश हो गया है, क्योंकि उनके व मेरे विचारों में कोई खास अन्तर न था। यह मेरी दुर्बलता अवश्य है किन्तु इससे उपन्यास की गति कुंठित नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त मैं मानता हूँ कि विशिष्ट कल्पना-शक्ति से पूर्ण व अपूर्व बुद्धिमान मनुष्यों ने भी सभ्यता के आरम्भ होने से अब तक जो कुछ भी लिखा है—वह नवीन नहीं; केवल प्राचीन भावों व विचारों की नये शब्दों या नई परिस्थितियों में आवृत्ति मात्र की है। इस-लिए भावों की मौलिकता की अपेक्षा मैंने पाठकों के सामने अच्छी, उपयोगी व रोचक सामग्री रखने का अधिक प्रयास किया है।

इस उपन्यास के पाठकों से मैं धैर्य व साहस की भीख माँगता हूँ; क्योंकि क्रान्तिकारी विचारों की सत्यता को मानने के लिए कोई भी शीघ्रता से तैयार नहीं होता, यद्यपि वे विचार पुराने विचारों की पुन-

रावृत्ति मात्र होते हैं। यह तथ्य मानव-विकास के इतिहास की बहुमूल्य देन है।

यह उपन्यास मेरी भावनाओं का प्रतीक है, अन्त में मैं इतना ही कहूँगा।

१५ मार्च १९५६ विजय मेहता

प्रिय "निन्नि" को

विजय मेहता

कलयुग की महाप्रलय

: १ :

"आधुनिक युग अध्ययन की दृष्टि से बड़ा विचित्र युग है। हर वस्तु में द्वन्द्व है, परस्पर विरोध है। इस यग को ढालने का दम लेने वाले ठेकेदार भी अपने कारनामों से भयभीत हो उठे हैं। जिस खोखली प्रगति का मानव ने कभी बड़े उछल-कूद के साथ स्वागत किया था, वरदान समझा था, उसी से आज वह विक्षुब्ध हो पीछा छुड़ाना चाहता है। किन्तु उस प्रगति के भूत ने मानव को भली प्रकार जकड़ लिया है और मानव सदा के लिए उसका गुलाम बन चुका है। प्रगति के कारण ही मानव-जाति अपने सर्वनाश के वहुत निकट पहुँच रही है। बिजली के कम्पन की भाँति मानव-जाति में भय की रेखा सर्वव्याप्त है। युद्ध का भय, मानव जाति के भविष्य का भय, खोखली प्रगति का भय, मानव के पतन का भय, और न जाने सम्भव है अपनी छाया का भी भय उनके सिर पर भूत की तरह सवार हो मानव को ईश्वर की सर्वोत्तम देन, बुद्धि को भी नष्ट कर रहा है। संसार के सब प्राणी एक ऐसे अस्त-व्यस्त जग में निवास कर रहे हैं जो अपनी ही घबराहट से मुक्ति पाना बहुत दूभर समझता है। इस सर्वव्यापक भय और बुद्धि के उन्मूलन से लोगों का जीवन की सार्थकता से विश्वास उठ गया है। ईश्वर को लोग एक ऐसा मोम का खिलौना समझने लगे हैं जिसको जब और जिधर चाहें मोड़ा जा सकता है। हर वस्तु चाहे वह सभ्यता हो या संस्कृति या धर्म, सब-के-सब विकृति के पथ पर होड़ ले रहे हैं। लोगों का जीवन के मूल्यों व उच्च आदर्शों से विश्वास उठ गया है। निराशा की ओर झुक रही

परिस्थितियों से तंग आया हुआ और निरर्थक जीवन की कृत्रिमता से ऊबा हुआ मानव अपनी चिन्ताओं और जीवन के संघर्ष से मुक्ति पाने के लिए अपना सारा धन और समय उपभोग और आनन्द में उड़ा देता है। इससे ही इस युग की तीन प्रमुख विशेषताएँ—व्यभिचार, दुराचार और भ्रष्टाचार उदय होती हैं। जिनको हम आत्मसम्मान को धक्का लगने के डर से प्रकट में खाओ-पीओ और ऐश करो की संज्ञा देकर पुकारते हैं। यौन-सम्बन्ध व आनन्दमय आदान-प्रदान इसके व्यापक परिणाम हैं। इस से मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं रहा और मनुष्य भी पशु की भाँति स्वार्थों से केंचुए या मोटे चूहे की तरह नशे में सारा जीवन बक-झक, बक-झक करते हुए ही बिता देने में सन्तोष करता है। क्या यही नहीं है हमारे विश्व की वास्तविक दशा और हम सब आँखें मूँदे नशे में पड़े हैं? पर हमारी ऐसी दुर्दशा और दुर्गति क्यों हुई?"

बालरूम में बाईं ओर बनी मधुशाला में राजन ऐसे ही विचारों की उधेड़-बुन में बैठा हुआ था कि उसका ध्यान स्वरवादकों के ज़ोर से बाजा बजाने पर भंग हो गया और वह उनकी ओर देखने लगा। उसने गिलास उठा कर शराब की एक चुसकी ली और अपने पाइप को सुलगाया। इतने में नृत्य-गृह की ओर से एक सुन्दर नर्त्तकी ने प्रवेश किया जो शीघ्र ही स्वरवादकों की स्वर-ध्वनियों के साथ अपने हाव-भाव और अंग-प्रत्यंग बनाने व मटकाने लगी। उसके आगमन पर ही एक नशे में धुत्त मनुष्य ने, जो उतावला हो चुका था, ज़ोर से चिल्ला कर कहा, "हाय! मेरी प्यारी डायना" और उठकर नर्त्तकी को भींचने के लिए जा ही रहा था कि उसके साथ बैठी उसकी स्त्री ने दो-चार गालियाँ सुनाकर उसे रोका, जिससे वह फिर वहीं बैठ गया, पर अपने आत्म-सम्मान को धक्का लगने के डर से, उसने बैरा को एक पैग ह्विस्की का और आर्डर दे दिया। इस घटना से नृत्य-गृह में बैठे लोगों में कुछ देर तक हँसी-चुहल होता रहा।

उतने में दो युवक युवतियों के बारे में बातें करते हुए राजन के पास से गुज़र गये।

नर्त्तकी अपनी आँखों की पुतलियों को मटका कर विचित्र भंगिमाएँ बना दर्शकों का मन मोह रही थी। उसमें काफ़ी आकर्षण था, जो कृत्रिम प्रसाधनों द्वारा टिका हुआ था, इसमें सन्देह नहीं। कभी वह आगे की ओर झुकती तो उसके अर्ध नग्न उरोज और स्पष्ट हो जाते और फिर कभी वह अपने उभरे हुए नितम्बों को ज़ोर से मटका देती, जिससे दर्शकों में कई युवकों की गर्म आहें निकल जातीं और कुछ अधेड़ आयु के मनुष्य कभी-कभी भावावेश में चिल्ला देते, "ओह मेरी प्यारी छम्मो, आ जा·········। उनके मुँह की पीली आकृतियों से स्पष्ट था कि वे सब वासना के रंग में डूबे हुए हैं।

नृत्य समाप्त हुआ। कुछ अधिक उत्तेजित व उन्मत्त मनुष्य रात का समय नियुक्त करने के लिए नर्तकी के पीछे हो लिए। जिनकी वहाँ तक पहुँच न थी, वे हँसी के बतौर कुछ गहरी शराब लेकर एक स्त्रियों के समूह में, उनको पिलाने के उद्देश्य से घुस गये, ताकि वे स्त्रियों से अपने बारे में कुछ अश्लील बातें सुनें और पीने से वृत्ति हटाने के कुछ उपदेश सुन कर हँसें और समझें कि हम इन स्त्रियों को उल्लू बना रहे हैं।

स्वरवादकों ने थोड़ा विश्राम लेकर फिर गाना-बजाना आरम्भ कर दिया। उनका ध्यान गाने-बजाने की अपेक्षा होटल के ठेके की समाप्ति पर अधिक था। उनकी लालची आँखें इस ताक में बैठी रहती थीं कि कोई धनी-मानी मनुष्य आकर उन पर कृपा करे और शराब पिला दे, जिनसे उनका दिन अच्छा निकल जाये। एक पियानो पर, दूसरा हार्न पर, तीसरा डमरू पर तथा चौथी अधेड़ स्त्री वायलिन पर स्वर मिलाकर एक भद्दी व उच्छृङ्खल धुन में तल्लीन हो बजा रहे थे, क्योंकि उनको किसी ने शराब भेंट की थी। वे उसी की इच्छानुसार धुन बजाने में रत थे। किन्तु

ऐसे गानों को प्रतिदिन सुनने के अभ्यस्थ लोग अपनी भद्दी बकवास में मग्न थे।

बालरूम खचा-खच भरा पड़ा था। उसमें नाना प्रकार की सजावट की गई थी। गुब्बारे व झंडियाँ लगी थीं। पुराने टंगे चित्र थे, जिन्होंने कई वर्षों से दिन-प्रतिदिन की घटनाओं को मौन हो निहारा था, जो केवल एक नये दर्शक को ही लुभावनी लग सकती थीं। सारे हाल में लगी बिजली चका-चौंध कर देने वाली थी। उसकी रोशनी में लाल फर्नीचर और चमकदार लग रहा था और लोगों की पीली आँखें व उदास आकृतियाँ वासना की भूख को स्पष्टतया प्रकट कर रही थीं।

दो एक छोटी आयु की लड़कियाँ, जिनको अभी अपनी अम्मा से नृत्य करने की इजाज़त नहीं थी, वे इससे चिढ़ कर नृत्य कर रहे जोडों के नुक्स निकाल रहीं थी, जिससे उनकी अम्मां उन्हें बुरी तरह डाँट रही थी। बेंड जोरों-शोरों से मस्ती की धुनें बजा रहा था। कुछ लड़के लड़कियों से चिपटे हुए नृत्य कर रहे थे, जैसे उन्हें भय हो कि उन्हें कोई छुड़ा कर ले जाएगा। एक कोने में कुछ लोग बड़ी बेरहमी से मुर्गे खाने पर जुटे हुए थे और स्वाद से हड्डियाँ चटका रहे थे। उनके भावों से प्रदर्शित होता था जैसे उमर भर के भूखे हों। कुछ लोग शराब पी रहे थे और लड़कियों को छेड़ रहे थे। राजन ने दूसरी ओर मुड़ कर देखा। मधुशाला की ऊँची गाल कुर्सियों पर उसके साथ कुछ गम्भीर पियक्कड़ बैठे थे। नृत्य-गृह के मंच के सामने काफी दूर तक मेज़ व कुर्सियाँ लगी थीं जिन पर लोग-बाग बैठे थे। उनकी मेज़ों पर शराब की बोतलें व सिगरेट के पैकेट खुले पड़े थे। कुछ महमान कल्फ लगे कपड़ों व सुन्दर सूट पहने अपनी बाहों में युवतियों को सम्भाले आ रहे थे। नयनाभिराम युवतियाँ अपनी नयलन की साढ़ियों की चमक-दमक से सारे वातावरण में टार्चें मार रही थी। वहाँ की वायु लन्दन व पेरिस की सुगन्धियों से युक्त थी। युवकों की नजरें इधर-उधर भटक कर फिर

युवतियों पर केन्द्रित हो जाती थी । अमेरीकी सभ्यता के कदर-दां, भारतीय युवक चेक-शर्टो व अमेरीकी चरवाहों की पेन्टों में भोंडी सरतें बनाये शतान बनने पर तुले हुए थे । तभी राक-एंड-रोल का सेशन प्रारम्भ हुआ । इसके आरम्भ होते ही अधेड़ उमर के जोड़े अपनी-अपनी मेज़ों पर आ गये । उनकी जगह पर भोंड़े युवक व युवतियाँ जो इस सेशन के लिए तड़प रहे थे, नृत्य के लिए आ गये । इस संगीत की मस्ती व उच्छृङ्ख धुनों पर तेज-से-तेज व जोशीले कदम रख कर जोड़े आवेश में आ नृत्य कर रहे थे । जो लोग नृत्य नहीं कर रहे थे वे उसके जादू से प्रभावित हो तालियों व सीटियों से साथ दे रहे थे । पियक्कड़ अपनी कुर्सियों पर बैठे मस्ती में अपने गिलासों व सिरों को घुमा रहे थे । उनके गम्भीर चेहरे इस समय जोश से उत्तेजित दीख रहे थे । लोगों के इस उत्साह से बेंड ने भी और जोर मारना आरम्भ कर दिया । पियानो वाला केवल एक उँगली से पियानो बजा रहा था । वह अपने समस्त शरीर के अंगों से राक-एंड-रोल कर रहा था । इसी प्रकार हार्न वाला भी उत्तेजित हो नीचे से हार्न बजाता हुआ ऊपर तक लेजाकर पीछे तक मुड़ जाता था । लोगों ने उत्तेजित हो गाना भी आरम्भ कर दिया और तालियों की गड़गड़ाहट से संगीत का स्वर हर क्षण तेज होने लगा । तेज़ नृत्य करने से युवतियों की वेश-भूषा ढीली हो जाती व कहीं-कहीं से सरक जाती, जिनको वे बार-बार ठीक करतीं थीं । कभी-कभी नृत्य करते हुए जोड़े आपस में जुड़ जाते, जिनसे एक दूसरे के शरीर का कोमल स्पर्श बड़ा सुहावना लगता । कभी-कभी समीप नृत्य कर रहे जोड़ों में युवकों के होंट युवतियों की लटों व माथे का स्वाभाविक चुम्बन कर लेते थे । इस प्रकार उच्छृङ्खलता व उत्तेजित दशा काफी देर चालू रही ।

उधर राजन राक-एंड-रोल के नृत्य को देख सोचने लगा, "क्या इस नृत्य में धर्म, मानवता, कला व सभ्यता नंगा नाच नहीं कर रही

हैं ? यह नृत्य तो भ्यानक होता जा रहा है। कहीं यह ताण्डव नृत्य में न बदल जाये ? क्या यह प्रलय की घोषणा नहीं ? नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

सारे वातावरण से विलासिता के एक अनोखे नशे की बू आ रही थी। राजन इस वातावरण का अभ्यस्त था। वह मधुशाला में शराबों के समीप ही पड़ी गद्देदार, ऊँची व गोल कुर्सी पर बैठा हुआ था। यद्यपि उसकी आयु चालीस से कम न थी फिर भी वह देखने में सुन्दर नहीं तो भद्दा भी न था। उसके घुंगराले बाल, नीली आँखें और हंसमुख चेहरा, कभी बड़ा आकर्षक रहा होगा। अब भी वह अपनी तीव्र बुद्धि से लोगों को अपनी ओर खींच लेता था। उसकी चौथी पत्नि शशि जिसकी पुष्ट मांसलता व गुदगुदे शरीर का कभी वह पुजारी था, एक टोली के साथ बैठी हुई थी, जिसमें उसके और मित्र भी थे। किन्तु आज वह उदास सा अलग बैठा था। ऐसा सम्भवत: उसके विचारों ने उसे बना दिया था। वह प्रसिद्ध दार्शनिक था जो कभी पहले असफल लेखक भी रह चुका था। और अब जिसकी रुचि मानवता के हितों व मानव-जाति के भविष्य जैसे विषयों पर आकर केन्द्रित हो गई थी। वह आज कुछ गम्भीर सा चिन्ताग्रस्त था। वैसे तो समय-समय पर विचार करते रहने की उसकी प्रकृति सी बन गई थी, किन्तु आज वह कुछ बेचैन सा भी था। हाल ही में युद्ध आरम्भ हो गया था। दोनों शक्ति-शाली गुटों ने धमकियाँ देनी आरम्भ कर दीं थीं। दोनों अपने नवीनतम तथा सबसे शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करेंगे, यह स्पष्ट था। इसी लिए इस युद्ध का महायुद्ध में परिणित होने का संघातक डर था। इसी लिए मानवता के हितों का प्रश्न गम्भीर बन चुका था। क्या सर्वनाश से बचना सम्भव है ? ऐसे ज्वलन्त प्रश्न किसी भी मानव-मन में उठने स्वाभाविक थे। इन पर मनन करना अब आवश्यक हो गया था।

"पर ये सब मनुष्य यहाँ क्या कर रहे हैं ? क्या इन सब को मनुष्य कहना मनुष्यता का अपमान नहीं ?"

उपभोग में डूबे हुए, विलासिता में रमे हुए केवल स्त्रियों के भूखे ये पशु अपने-अपने साधनों द्वारा आनन्द उड़ा रहे हैं। इनके मोटे पेटों से पता चलता है कि ये आनन्द भी झोंपड़ियों में खन-खना रहे कगालों के सिर पर चढ़ कर बोल रहा है। क्या ऐसे जघन्य व्यापारों से मानवता कराह नहीं उठी ? क्या इनको भय नहीं है ?

"काहे का ?" "अपने भविष्य का।"

"हाँ है, तो ये लोग बाल रूम में क्यों आते हैं। ये बाल रूम में नहीं आना चाहते पर इनकी चिन्ताएं, औरसंघर्ष इन्हें यहां दो क्षण आनन्द से बिताने के लिए बाध्य कर देते हैं। हाँ, यही बात है। यदि यह बात नहीं तो मैं यहाँ क्या करने आता हूं ?

"मैं तो मधुशाला इसलिए आता हूँ कि यहाँ मैं बहुत खुश रहता हूँ। यहाँ मेरे मित्र भी हैं। कभी वाद-विवाद और कभी हँसी ठट्ठा भी हो जाता है। यहाँ पर आने जाने वालों से शहर की नई-से-नई खबर सब से पहले मिल जाती है। नित नये किस्से कहानियाँ व प्रेमालाप सुनने व देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सब कार्य की योजनाएँ यहीं पर बनती व चालू रूप दी जाती हैं। यहीं मेरे सब मित्र आते हैं। श्रीमन आता है जो प्रसिद्ध पत्रकार व विचारक है व जिसका मेरे साथ बहुत मेल रहता है। कृष्णा है जो दलाली का काम करता है, जो शाम को सारे दिन के मकानों के शेयर-मार्कीट के भाव बताता है। जब कभी कमा कर आता है तो बहुत बढ़िया शराब का आर्डर देकर सबसे हंसी-चुहल करता है। और जिस दिन हार कर आता है तो उदास-सी सूरत बना कर एक ओर बैठा रहता है। सुधीर सदा नई-नई लड़कियों से प्रेमालाप करने के लिए उत्सुक रहता है। कृष्णा और सुधीर आज जिनमें शशि भी थी एक टोली में बैठे थे। यहाँ सब लोग अपनी चिन्ताएँ

भूल नृत्य कर अगले दिन के लिए तैयार हो जाते हैं क्या यह अच्छी जगह नहीं ? है तभी तो मैं यहाँ आता हूँ ।

राजन कुछ सोच रहा था । कई दिनों से उसके मन में कुछ इकट्ठा हो रहा था, जिसका उबाल वह निकाल फेंकना चाहता था । आज इस-लिए वह सोच रहा था और उसने नृत्य भी नहीं किया था । राजन सोचने लगा ये लोग भी तो यही कुछ करते हैं । इनका भय इतना गहरा है कि उसे आनन्द में उड़ा देते हैं जैसे एक सिगरेट पीने वाला घुएँ को उड़ा देता है । यहाँ उनको स्नेह युक्त, रसीला वातावरण मिल जाता है—काम-पिपासा शान्त करने के मार्ग और शराब के नशे में चिन्ताओं से कुछ क्षणों के लिए मुक्ति । हाँ ! साधन सब के भिन्न-भिन्न हैं, यद्यपि साध्य एक ही है कि इस व्यर्थ व क्षणिक जीवन का बोझ किस प्रकार हल्का किया जाय ।

: २ :

इस सर्वत्र फैले भय का क्या कारण है ? जो हम आज इस सर्वनाश की दुर्गति पर पहुँचे हैं, इसका क्या कारण है ? इन सब का एक ही उत्तर है : ये प्रगतिवाद और विकासवाद के सिद्धान्त जिन पर इस नवीन युग की नींव पड़ी है, वे सब खोखले हैं। यदि नींव कच्ची होगी तो भवन को सुरक्षित समझना हास्यस्पद विडम्बना नहीं तो और क्या है ? क्या यही हमारी वास्तविक अवस्था नहीं ? आज के इन्हीं प्रगतिवाद और विकासवाद के सिद्धान्तों ने हमारी राजनीति, संस्कृति, कला और धर्म को कुछ पूँजीपतियों के हाथों सदा के लिए बेच दिया है। भारतवर्ष में ५० लाख जन-संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है, क्या यही प्रगति नहीं ? अमेरिका, रूस या ब्रिटेन में मोटरें चल रही हैं, दौलत के लिए उन्मत्त लोग जंगलों को काट-काट कर उद्योग-धन्धे, कारखानें, मिलें, लगा रहे हैं। विज्ञान के दावेदार अणुबम, उद्जनबम बना रहे हैं। जंगलों को काटकर बारूद के ढेर लगाए जा रहे हैं। कुछ लोग समुद्र की सतह में जाकर तथा पृथ्वी को खोद-खोद कर खनिज-पदार्थों की खोज करते हैं। बड़ी-बड़ी नदियों पर पुल बाँध कर प्रकृति से द्वन्द्व लेते हैं। पेट्रोलियम के तेल-कुँओं पर आए दिन भीड़ जमा रहती है। इन भीषण मूर्खता के कार्यों को हम प्रगति की संज्ञा देते हैं। धन-दौलत की भूख, वासना की भूख, रोटी-कपड़े की भूख और न जाने अपने मांस की भी भूख, जो हमें खाए जा रही है, हम उसी प्रगति को बड़े आदर से देखते हैं और बड़े गर्व से कहते हैं कि हम प्रगतिशील हैं। हम इस दुर्दशा पर पहुंच चुके हैं कि जिस वस्तु को हमने अपनी सुविधा

के लिए बनाया था, हम उसके गुलाम बन चुके हैं और उसकी इच्छा के बिना एक पग भी इधर-उधर नहीं रख सकते। और याद रखिए क्या यह सब प्रगति है, हाँ यह प्रगति है। जनसंख्या की वृद्धि और उस भयानक जन-संख्या की भिन्न-भिन्न प्रकार की भीषण भूख को शान्त करने के कार्य करना प्रगति है। क्या यह प्रगति की गलत परिभाषा नहीं है ? यदि आप इस परिभाषा से सहमत नहीं हैं तो मानवता का इतिहास खोल कर देख लीजिए। उद्योगीकरण युग से आज तक की घटनाओं पर नजर दौड़ाइये। उद्योग-धन्धों के बढ़ने से मनुष्य की धन-दौलत में वृद्धि हुई व अन्न का अधिकाय भी हुआ। इससे जन-संख्या में दिन दुगनी रात चौगनी उन्नति हुई। उस भयानक जन-संख्या की भयानक भूख भी छिड़ी जो स्वाभाविक थी। इससे मनुष्य काँपा और फिर तेल के कूपों में तथा कारखानों में घुस गया। उन पैसों से उसने धन कमाया और अन्न मोल लिया। उसका यही चक्कर अभी तक चल रहा है। विज्ञान के वरदानों से और कृषि के नये अनुसन्धानों व प्रयोगों से पर्याप्त खाने को मिल गया। किन्तु आज फिर कुछ सीमा तक, विश्व में, किन्तु निस्संदेह हमारे देश में जन-संख्या की वृद्धि और उसकी भीषण भूख एक ज्वलन्त समस्या बन चुकी है, जो प्रतिदिन हल से बाहर हो रही है।

प्रगति के विशेषत: विज्ञान की प्रगति के भीषण परिणामों के भय का आभास अब मानव को कुछ अधिक होने लगा है। रेडियो समाचार-पत्रों, रंगमंच आदि के विकास से मानव को विज्ञान के अभिशापों की अच्छी-खासी जानकारी मिल जाती है, जिससे उस पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है। विज्ञान व टेकनीकल प्रगति की सर्व-व्यापकता ने हमें परस्पर सम्बन्ध व परस्पर सहयोग के क्षेत्र को बुरी तरह पछाड़ दिया है। इससे ही आज भय, असुरक्षा व चिन्ता एक विद्युत् की रेखा के समान चारों ओर फैली हुई है। विज्ञान ने जितने वरदान दिये हैं उनसे

अधिक अभिशाप भी ; यहाँ तक कि मानव वैज्ञानिकों का वैज्ञानिक अपने आविष्कारों का ही गुलाम बन चुका है।

वास्तव में मानव को मानव के द्वेष ने, ईर्ष्या ने, राष्ट्र को इन्हीं राष्ट्र की बढ़ती हुई शक्ति ने, इस अभिमानी, स्वार्थी मानव के शक्तिशाली व धनी बनने की चाह ने इस सर्व-व्यापक भय के वातावरण को पनपने के लिए विवश किया है। राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने की लोलुपता से मानव ने ऐसे-ऐसे संघातक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार किया है, जिनसे यदि वह अपने द्वन्द्वों के ऊपर भी वार करे तो उसका अपना सर्वस्व नष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

संसार के चारों ओर युद्ध का एक भयावह वातावरण छाया हुआ है। युद्ध की इस निकटता व उससे अवश्यम्भावी सर्वनाश से विश्व के सब लोग एक अजीब सी अवस्था के आवरण में लिपट गये हैं। जीवन की इस क्षणभंगुरता ने उनको बर्बर, क्रूर और नृशंस बना दिया है। आज के युग की कलुषित प्रवृत्तियों में पड़ा हुआ हतप्रभ निराश और निस्साह मानव दुःख तथा भय से चीत्कार कर उठा है। उसका यह भयंकर चीत्कार, जो कभी करुण पुकार का रूप भी ले लेता है, आज सार्वजनिक सभाओं में, शान्ति-सम्मेलनों में, आम जलसों तथा झण्डों के साथ घोर विरोधी प्रदर्शनों में स्पष्ट सुनाई देता है।

"क्या मैं भी भयभीत हूँ, नहीं तो······पर कुछ उदास अवश्य हूँ या दुःखी······ ? हाँ यह तो अवश्य है। अपने समान जाति के मनुष्यों के हितों को सोचना, समझना, उनको भीषण गर्त में गिरते देख कर सहानुभूति या संवेदना प्रकट करना स्वाभाविक है। किसी के दुःख में हाथ बटाना मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है। दुःख व त्याग से आत्मा शुद्ध होती है, मनुष्य अपने दुःखी होने के कारणों को सोचता है, जिससे उसे सदा कर्म करने की प्रेरणा मिलती रहती है······। यह सब मेरे जैसे मानवतावादी के लिए सोचना क्या उपयुक्त नहीं ?" दूसरे ही क्षण वह हँसा और उसने अपने चारों ओर चलती हुई नज़र दौड़ाई।

उसने सोचा यदि मैंने किसी को ऐसे ऊँचे आदर्श की बात कही होती तो वह मुझे पागल बूढ़ा, या खूसट कह कर पुकारता और कहता, "मियाँ! जागो, कौनसे युग में सपने ले रहे हो। उतने में वाल्टस का मधुर संगीत बजना आरम्भ हुआ, किन्तु उच्छृङ्खल युवकों की वृत्ति राक-एण्ड-रोल जैसे तेज़ संगीत में अधिक रमती थी, जिसकीं कि वे क्रूर व मन्द आकृतियाँ बनाये बैठे थे।

राजन ने अपनी समाप्त हो रही हाला को घृणा की दृष्टि से देखा और एक घूँट में उसको समाप्त कर एक पेग का और आर्डर दे दिया। उसने पाइप में तम्बाकू भरा और सुलगा कर कुछ गहरे कश लेने लगा। वह फिर अपने विचारों में निमग्न हो गया।

"क्या यही है हमारी सभ्यता का विस्तार कि हम दिन-प्रतिदिन नये-नये व अधिक भीषण एवं संघातक अस्त्रों का आविष्कार करने में जुटे रहें—एक-दूसरे को भयभीत करते रहें व संसार को हर समय युद्ध की विभीषिका में घेरे रक्खें। परमाणु अस्त्रों के परीक्षणों से उनका सर्व-शक्तिमान होना सिद्ध हो चुका है। इन परीक्षणों द्वारा फैलाई हुई रेडियो सक्रिय धूल हमारी वायु को बुरी तरह दूषित कर रही है। इस रेडियो सक्रियता का शरीर पर भी खतरनाक प्रभाव पड़ता है। यह परमाणु विकरण संसार के वर्तमान व भावी संतति के लिए भी खतर-नाक साबित होगी। इसके अतिरिक्त यह ऐसी रहस्यमय बीमारियों को जन्म देगी जिनको चिकित्सकों ने कभी देखा व सुना नहीं, जिनका निकट भविष्य में कोई इलाज निकलना भी सम्भव नहीं। ऐसी परि-स्थितियों में इन परीक्षणों को रोकना उचित नहीं? हिरोशिमा व नागा-साकी की याद भर से आज भी हमारा दिल दहल उठता है। वहाँ की तहस-नहस व सर्वत्र बरबादी के दृश्य क्या हमें कुछ नहीं सिखा सकते?

परमाणु विस्फोटों से रेडियो सक्रिय धूल वायु में मिल जाती है। किन्तु वह सदा वायु में न रहकर, रेडियो एक्टिव वर्षा व रेडियो एक्टिव

हिम का रूप धारण कर पृथ्वी पर गिरती है। उस वर्षा से पौधों व पत्तों में प्रवेश करती है व वहाँ बनी रहती है। हम उसे गायों-भैंसों के दूध द्वारा या पशुओं के मीट या विभिन्न वनसपतियों द्वारा अपने अन्दर ले जाते हैं, जो उन पौधों और पत्तों पर पलते हैं। रेडियो एक्टिव वर्षा से हमारे पीने के पानी को भी हानि पहुँचती है।

इस प्रकार रेडियो सक्रिय धूल हमारे अन्दर धीरे-धीरे वर्षों तक पहुँचती रहती है व अन्दर-ही-अन्दर हमको खोखला करने का काम आरम्भ कर देती है। इसमें एक भयंकर पदार्थ सट्रोटियम ९० होता है जिसको हम अन्दर ले जाते हैं। रेडियो सक्रियता और उसमें मिले हुए सट्रोटियम ९० से शरीर व उसके अवयवों पर गहरा असर पड़ता है। इन शक्तिशाली परमाणुओं के विकरण के प्रभाव से खून में गड़बड़ी पैदा होती है, खून बनाने वाले कोष, त्वचा और शुष्ककोण आदि में नुकसान पहुँचता है और यहाँ तक कि भ्रूण तथा गर्भस्थ शिशु भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह पाते। इसके अतिरिक्त भावी पीढ़ियाँ इसके प्रभाव से ऐसी सन्तान उत्पन्न करेंगी जिनकी शारीरिक व मानसिक ग्रन्थियाँ विकृत होंगी। जिसने कभी विकृति रूप की सन्तान को जनने वाली माँ की कठिनाइयों को देखा है व उसकी चीखों को सुना है वह इस सत्य को जानते हैं कि परमाणु अस्त्रों का परीक्षण भावी पीढ़ियों के लिए सरासर अन्याय व अपराध है। परमाणु विकिरण एक खतरनाक वस्तु है व इनका परीक्षण केवल मात्र मानवता की भलाई के लिए ही बन्द कर देना चाहिए।

इन भयानक अस्त्रों के नंगे विस्फोटों से वह दिन-प्रतिदिन बन रहे नये अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध का खतरा सदा तरोताज़ा बना रहता है। वास्तव में संसार की स्थिति को दो शक्तिशाली राष्ट्रों ने डाँवाडोल कर रखा है—एक ओर अमेरिका व उसके साथी दूसरी ओर रूस व उसके साथी। सबसे पहले अमेरिका ने अणु बम बना कर नागासाकी व हिरोशिमा में

फेंका, फिर रूस ने भी अणु बम बना कर समान शक्ति धारण करने की घोषणा की। उसके पश्चात् अमेरिका ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उद्जन बम्ब का आविष्कार किया व उधर रूस ने भी अपनी शक्ति का डंका बजाने के लिए उद्जन बम्ब का प्रयोग किया। इनके संघातक परिणामों का अनुमान लगा कर मानवता दहल उठी और अब राकेट तैयार हो रहे हैं और सैनिक अड्डे बनाये जा रहे हैं जिन पर से अन्तर-महाद्वीपीय प्रक्षपणास्त्रों द्वारा एवं आकस्मिक हमलों द्वारा यन्त्रचालित युद्ध हुआ करेंगे।

इन नये संघातक अस्त्रों के प्रयोग से आधुनिक युद्ध क्या और कितना भयानक होगा यह हम अणु व उद्जन बम्ब की भीषण शक्ति से अनुमान लगा सकते हैं। बड़े-बड़े नगरों को कुछ क्षणों में गिरा दिया जायेगा। करोड़ों मनुष्य एक ही क्षण में मर जायेंगे, जैसे प्रलय के दिन सर्वनाश होता है। कुछ वैसा ही दृश्य उपस्थित होगा। ऐसे युद्ध में विजय किसी की नहीं होगी, दोनों तरफों की हार ही होगी। जो लोग सौभाग्य से या दुर्भाग्य से बच जायेंगे वे परमाणु विकिरण की भीषण वृद्धि से ऐसे असाध्य रोगों में फंस जायेंगे जिनका अभी तक कोई इलाज नहीं निकल सका।

विश्व की ऐसी भीषण स्थिति होने पर भी हम सब कुम्भकर्ण की नींद सोये पड़े हैं। कुछ ऐसे राष्ट्र व महापुरुष सराहनीय हैं जो हर बार पछाड़े जाने व दुतकारे जाने पर भी सदा शान्ति की स्थापना के लिए प्रयास करते रहते हैं। किन्तु युद्ध के मतवाले, हिन्सक प्रवृत्ति के पागल मनुष्य कोई-न-कोई धमकी दे या प्रसंग छेड़ कर फिर संसार को युद्ध के कगार पर खड़ा कर देते हैं। बार-बार बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन बुला कर विफल हो चुके हैं। वैसे ही जैसे जब से युद्ध आरम्भ हुए हैं और अब तक उनके शान्ति के प्रयास विफल होते आये हैं। लीग आफ नेशनस व संयुक्त राष्ट्र संघ आधुनिक उदाहरण मात्र हैं। क्या आधुनिक प्रयासों की भी

ऐसी ही दुर्गति होगी ? उसका उत्तर देना कठिन है, किन्तु आज का राजनैतिक वातावरण बहुत दूषित हो चूका है । हम एक-दूसरे पर विश्वास नहीं करते, एक दूसरे को सदा संदेह की दृष्टि से देखते हैं, एवं वास्तविकता को न पहचान कर उसके इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं । यह सब पिछले दो महायुद्धों पर परिणाम है जिन्होंने हमारी इमानदारी, सच्चाई, व न्यायप्रियता को सदा के लिए लात मार दी ।

मनुष्य को इतनी गिरावट तक पहुँचाना हमारा कार्य था । क्या अब उससे बड़ा यह कार्य नहीं कि हम ही उस मनुष्य को बर्बरता व क्रूरता के मार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर लगायें जिसमें समस्त मानवता की भलाई निहित है । यह सब हमारे ही हाथों में है—चाहें तो हम पर मार-धाड़ से एक-दूसरे को समाप्त कर लें, या एक दूसरे पर परस्पर विश्वास व सम्वेदना रख कर समस्त प्राणी मात्र को बन्धुत्व का स्थान देकर मानवता का सुखद भविष्य संजोयें, जिससे नई सभ्यता का विकास आरम्भ हो सके। कितना अहलादमय होगा वह दिन ! किन्तु वह दिन देखने के लिए हमें समय की प्रचलित गति को बदलना पड़ेगा । हमें मनुष्यों व राष्ट्रों में एक नई भावना व एक नये उत्साह को प्राण देने होंगे । भयंकर युद्धों व संग्रामों में हम भूल गये हैं कि हम मनुष्य भी हैं । हमें फिर उसी मनुष्य को जगाना है जिसने अशोक में कलिंग की लड़ाई के उपरान्त रूप लिया था, जिसने कि व्यापक बरबादी, खून-खराबी, विधवा, बे घर औरतों एवं अनाथ भोले बालकों के समुदाय को देखकर फिर कभी न लड़ने का प्रण लिया था । क्या आधुनिक युग में नागासाकी व हिरोशिमा के रूप में कालिंग का युद्ध साकार रूप में नहीं है ? वहाँ के तहस-नहस व सर्वत्र बरबादी के दृश्यों की याद भर से आज भी हमारा दिल दहलने लगता है । नागासाकी में हर दस में से एक पागल बच्चे के भविष्य को बिगाड़ने वाला कौन है ? क्या हम वहाँ के असाध्य रोगों से ग्रसित रोगियों की कराहों से कुछ नहीं समझ सकते ?

क्या हम दिन-प्रतिदिन हो रहे सिनेमा, ड्रामा, उपन्यास, जल्से, प्रदर्शन व सम्मेलन जिनमें युद्ध के नग्न रूप को उभार कर दिखाया या लिखा जाता है, उनसे कुछ नहीं सीख सकते ? क्या हमें यह मालूम नहीं कि आधुनिक यु एक ऐसी तात्पर्य रहित, भीषण व संघातक वस्तु है जिसको किसी भी अवस्था में आरम्भ नहीं होने देना चाहिए। क्या हम कलिंग की लड़ाई के उपरान्त अशोक महान् के निर्णय से कुछ नहीं सीख सकते ? क्या हम आने वाली अपने वंशज की पीढ़ियों को विकृत रूप धारण करते देखना सहन कर सकते हैं ? क्या इस धरती को, जहाँ हमारे रहने का जन्म सिद्ध अधिकार है, लड़ मर कर, दूषित कर, किसी और लोक को दे देना चाहते हैं ? नहीं···नहीं यह धरती हमारी है और हम किसी को इस पर अधिकार नहीं करने देंगे। परमाणु युद्ध करना मानव के अधिकारों का उलंघन है, व अन्तर्राष्ट्रीय कानून को चुनौती। हम सब को तैयार हो, एक नई भावना व तेज पैदा करना है जो परस्पर विश्वास, स्नेह व सम्वेदना का संचार करे जिससे शान्ति के मार्ग खुल जायें और नये सिरे से मानव का विकास आरम्भ हो, किन्तु जो लोग ऐसा कार्य करने का भार लें वे उसे उच्च हृदय व लगन से निपटायें, क्योंकि मानवता के भविष्य की समस्या बहुत गहन व जटिलतम गुत्थी बन चुकी है व समस्त प्राणी मात्र के लिए यह सब से महत्त्वपूर्ण समस्या है कि मानव का असतित्व अब क्या होगा ?

: ३ :

वह युद्ध की निकटता से मानव पर पड़ रहे गम्भीर प्रभावों पर सोच रहा था कि पीछे से उसकी पीठ पर श्रीमन ने थपकी मारी और बोला, "हलो फिलॉस्फर ! बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठे हो। मैं तुम्हारी विचारधारा में विघ्न ... ...

"हलो, जर्नलिस्ट ! आओ आओ······क्या पेग मंगाऊँ ? एक छोटी ह्विस्की" बैरा की ओर देखते हुए राजन बोला, "लो सिगरेट तो पीयो, यार !" हाथ बढ़ाते हुए राजन ने सिगरेट-केस आगे किया।

"हाँ धन्यवाद" श्रीमन ने सिगरेट लेते हुए कहा।

श्रीमन एक शक्तिशाली पत्रकार था, जिसको संसार व उसकी समस्याओं की अच्छी-खासी अपटूडेट जानकारी थी व कई सम्पन्न व प्रभावशाली मनुष्य भी उसकी लेखनी के नीचे दबे रहते थे। जब कभी वह सन्ध्या को बार में आ जाता तो उसके इर्द-गिर्द नये व ताजे समाचार पाने के लिए उत्सुक लोगों की भीड़ लग जाती। श्रीमन भी अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए दो-ढाई घण्टे तक चटपटे मसाले लगाकर समाचारों व कथाओं को सुरुचि पूर्ण बना कर सुनाता।

"आज कौनसा सनसनीपूर्ण समाचार लाये हो दोस्त !" राजन ने उसका सिगरेट सुलगाकर अपना जलाते हुए पूछा। किन्तु शीघ्र ही अपने प्रश्न की गलती को समझ कर कहा, "आओ गिलास तो टकरायें" क्यों कि उसे पता था कि यदि श्रीमन एक बार शुरू हो गया तो बिना ब्रेक लगाये बोलता जायगा। श्रीमन ने भी बात पलटते हुए कहा "सुनाओ ! तुम कौनसी गुत्थी सुलझाने में मग्न हो ?"

"राजन ने एक कश लिया व पीछे झुक कर बैठ गया और बोला, "पिछले दो महायुद्धों के बाद मनुष्य की स्थिति बड़ी विचित्र बन चुकी है। मानव अपने जीवन की अस्थिरता से घबरा उठा है। जब किसी को यह पता न हो कि उसका कल तक जीने का अधिकार सुरक्षित है या नहीं तो वह क्योंकर सच-झूठ नैतिक-अनैतिक एवं धार्मिक-अधार्मिक सिद्धान्तों की परवाह करेगा। ऐसी शोचनीय परिस्थितियों में उसका सभ्यता से, ईश्वर से, जीवन की उपयोगिता से, उन्नति से, सद्‌गुणों व उचव आदर्शों से विश्वास उठ चुका है। वह सोचता है, क्या हुआ मैंने अमुक पुरुष को धोखा दिया, झूठ बोला या ईमानदारी का व्यवहार नहीं किया, क्योंकि क्या पता कल लड़ाई हो, उद्‌जन बम्ब पड़े और हम सब नष्ट हो जाएं। तब उस सचाई व ईमानदारी का क्या मूल्य होगा ? तब मुझे निरादर करने बाला कौन होगा ? इसलिए सव लोग अन्धा-धुन्ध गुण्डा-गर्दी में रत हैं। लोगों का यह लक्ष्य बन गया है कि खाओ-पीओ और ऐश करो। ऐसी प्रवृत्ति बनने से भ्रष्टाचार, व्यभिचार व अत्याचार को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक है।

"आज मनुष्य की राजनीति को देखो या तो हीरों नेताओं और अत्याचारी शासकों की पूजा होती है या प्रतिनिधि सभाओं में लुटेरों की बड़ाई। राजनीतिज्ञों का उनकी शक्ति के लिए, न कि उनके गुणों के लिए आदर होता है। अच्छे ईमानदार, सच्चे देशभक्त व समझदार राजनीतिज्ञों की जगह यह क्षेत्र कुछ दलों के इने-गिने गुण्डों के हाथ सदा के लिए आ गया है, जो पैसे या वाक्-चतुराई के बल से शक्ति पर काबू पाकर अपने घिनौने व स्वार्थी कार्यों को चलाने में मग्न रहते हैं। छली व पाखंडी राजनीतिज्ञ लोगों की भावनाओं व आशाओं के साथ खेल खेलते हैं। वे जनता को सदा अन्धेरे में रखते हैं, चाहे सारा देश कुए में जा गिरे। प्रथम महायुद्ध के सभी नेताओं की घोषणाओं में यह स्पष्ट तौर पर दोहराया जाता था कि यह युद्ध केवल स्वतन्त्रता या प्रजातन्त्रता को बनाये रखने के लिए लड़ा जा रहा है।

"यही हाल कला का भी है। जहाँ लेखक पैसे के पीछे अपनी स्वतन्त्रता को लात मारता है। वह जनता को साहित्य न देकर कुछ वादों व राजनीतिक दलों की कहानी सुनाता है। जिससे उसका क्षेत्र सार्वभौमिक न होकर चूहे के बिल की तरह संकुचित रह जाता है।"

"हाँ भाई तुम्हारी बात ठीक है। अत्याचार का तो सब जगह बोलबाला हो रहा है। पीछे एक गिरोह बच्चों को भगाकर भयंकर कार्य करता हुआ पकड़ा गया।"

"बच्चों के साथ क्या करता था गिरोह ?" बढ़ती हुई जिज्ञासा से राजन ने पूछा।

"गुप्तचर विभाग के एक अधिकारी ने मुझे यह घटना बताई थी। कुछ जंगली दैत्य छोटे-छोटे सुकुमार बच्चों को वीराने में अपने अड्डों पर ले जाते थे। उनका सिर मुँडवा, उसमें चीरे का चिन्ह डलवा, सिर के बल उन्हें लटका दिया जाता था। उनके सिर के नीचे तप रही कढ़ाई रखी रहती थी। बच्चे के सिर में से टपक-टपक कर एक मूल्यवान द्रव्य 'मम्याई' निकलता था जिसके लिए ये बच्चों को तड़पा-तड़पा कर मार देते थे। 'मम्याई' निकालने के बाद वे बच्चों के मांस व हड्डियों को बड़े चाव के साथ खाते थे।"

"अत्याचार की भी कोई सीमा होती है। मैंने एक बात और सुनी है कि आदमी के मीट को जो एक बार चख लेता है वह फिर उसके स्वाद के लिए मर-मिटने के लिए भी तैयार हो जाता है।"

"हाँ, यह सच है। यही हाल तो इन जंगली जातियों के साथ होता है। इनको आदमी के मांस का जब चस्का लग जाता है तो फिर वे उसके बिना नहीं रह सकते चाहे जिस तरह भी उसे पायें। पीछे ऐसा ही एक नरभक्षी साधु श्मशान भूमि में गढ़े हुए मुर्दों को खाता हुआ पकड़ा गया था। चस्का लगने पर तो मरे हुए तक को भी खा जाते हैं। यह तो

एक व्यक्ति का किस्सा है। ऐसे कई अड्डे और गिरोह तुम्हें कई जगह मिलेंगे और इनका पता लगाना भी कोई खालाजी का घर नहीं है"।

"उनकी बात तो छोड़ो। पीछे में अखबार में एक महन्त का किस्सा पढ़ कर दंग रह गया। सुना है वह बीस-तीस हज़ार रुपया लगा कर प्रमुख महन्त को मरवाने का षड्यन्त्र रच रहा था। जिससे वह मुख्य महन्त बन कर मठ की सारी सम्पत्ति, धन, दौलत का स्वामी बन जाये। जब पंडितों का यह हाल है तो···"

"यह तो क्या मैं तुझे इससे भी ताजा समाचार सुनाता हूँ। एक विख्यात साधु २० हज़ार रुपये लेकर लड़की बेचने के अपराध में पकड़ा गया। तलाशी लेने पर उसके पास तीन-चार रखैल लड़कियाँ, बन्दूकें अन्य लड़ाई का सामान, काफी मात्रा में धन व वैभव के पदार्थ प्राप्त हुए। पता लगा है कि वह नामी डाकुओं का अड्डा भी है व वहाँ की चढ़त डाकुओं के भोग-विलास के काम में आती है।"

"ऐसी बातों को सुनकर कितना दुःख होता है। कहीं तो मठों व मन्दिरों की चढ़त डाकुओं के जघन्य व्यापारों के लिए दी जाती है और कहीं इसके विपरीत साधुओं के नाम पर कई आश्रम, मन्दिर व मठों का संचालन ठगों, अमीरों व डाकुओं द्वारा अपना उल्लू सीधा करने के लिए होता है।"

"ये जटाधारी साधु पाखंडी नहीं तो और क्या हैं। इनके निजी जीवन को निकट व गुप्त रूप से देखने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। गाँजा, अफीम, चरस व शराब का सेवन तो ये आम करते हैं, व अन्य विलासिताओं का उपभोग इनको अधिक प्रिय होता है।"

"इनके ऐसे व्यवहार का भी कारण है, श्रीमन, वास्तव में धर्म के आदर्श इतने ऊँचे हैं कि उनका पालन कर सकना साधारण मनुष्य के लिए तो क्या साधुओं के लिए भी असम्भव है। जो कोई नया पुजारी पूर्ण विश्वास के साथ मन्दिर में कुछ प्राप्त करने के लिए जाता है

उसको भी कुछ सालों के अथक परिश्रम के बाद पता लगता है कि वह तो अभी तक खाक ही छान रहा था। पुराने साधुओं को देखकर जिनसे उसको पहले घृणा थी अब वह श्रद्धा से उनके मार्ग पर चलने लग पड़ता है। इसीलिए तो सामान्य लोगों में गिरावट का आना स्वाभाविक है। आजकल तो स्थिति इतनी शोचनीय हो चुकी है कि धार्मिक प्रवचनों को सुनाने के लिए फिल्मी गानों द्वारा व उनकी धुनों पर बनाये गये भजनों द्वारा भीड़ को एकत्रित करना पड़ता है। यह एक सबल प्रमाण है जो घोषित करता है कि सामान्य मनुष्य की रुचि व विश्वास धर्म से धीरे-धीरे उठ रहा है। यदि हमें लोगों को धर्म के प्रति फिर से जागरुक करना है तो हमें धर्म के आदर्शों को मानवीय स्तर पर लाना है, जिनसे वे स्वाभाविक बन जायें, साधारण मनुष्य की समझ में आ सकें, व उनका पालन करना सरल हो जाये। हमें इस सदी की व्यस्तता के अनुकूल अपने सब कार्यों का ढालना है।"

"इन उच्च आदर्शों से ही लोगों में ईश्वर के होने न होने पर शंका हो उठी है। यद्यपि एक वैज्ञानिक उस परम सत्ता व उसकी रची प्रकृति पर विजय पाने के प्रयास करते हुए भी ईश्वर पर विश्वास व श्रद्धा रखता है, किन्तु आज की सभ्यता के बहु-मुखी विकास एवं सर्वव्यापक प्रगति के सिद्धान्तों ने मनुष्य का ईश्वर से विश्वास उठा दिया है। कितनी विचित्र बात है?"

"एक पेग ह्विस्की और देना", बैरे की ओर देखकर राजन ने कहा। फिर श्रीमन की ओर देखकर बोला, "क्या मजे की बात है कि बीसवीं सदी के आदमी शराब पीकर भगवान् की व्याख्या करते हैं। इस बात पर दोनों ठहाका मारकर हँसे। "यह तुम्हारी बात ठीक है कि ईश्वर के होने पर लोगों को विश्वास होना चाहिए, किन्तु उन दलितों शोषितों व दरिद्रों की भी कभी तुम ने सोची है जिनका जीवन हाथ से मुँह तक एक टुकड़ा रोटी कमाने में निकल जाता है। जो सर्दियों को बिना ओढ़नी के ठिठुरते बिता देते हैं व वर्षा में जगह न होने से चू रहे छप्परों में समय

काट देते हैं। जिनका जीवन एक लम्बी कारागार है। जिनके अश्रुओं की धाराएँ ही उस कारागार की चार दीवारी को गीला करती रहती हैं। उनके लिए ईश्वर का क्या अस्तित्व है ? ऐसे लोगों की द्रवित व दयनीय दशा देखकर तो कभी-कभी यह विचार मन में उठने लगता है कि ईश्वर कुछ नहीं, उसकी रचना कुछ पाखंडियों ने स्वार्थ हित के लिए बनाई होगी या कुछ निर्बल मनुष्यों ने सहारे के लिए कभी भगवान् नामक वस्तु को प्रतीक माना होगा, या जब लोगों को किसी वस्तु की उत्पत्ति का व अन्य जानकारी का पता न लगा होगा तो उन्होंने यह कहकर कि इसको ईश्वर ने बनाया है, अपनी जिम्मेदारी को या कमजोरी को छुपाया होगा। यदि ईश्वर व उसकी परम दयालुता कोई वस्तु होती तो सभ्यता के जन्म से चल रहे दरिद्रों के रोदन की उस परम सत्ता के दरबार में अवश्य सुनाई होती।"

'बात तो तुम उचित कहते हो किन्तु इस संसार की आश्चर्य चकित रचना-कौशल से, उसमें प्राण फूंकने से, सृष्टि के ऐसे संचालन से कि सब कुछ व्यवस्थित रहे जैसे सूर्य को इतनी दूर रखने से कि बीज की उत्पत्ति हो सके, वह फलने फूलने की जगह जलकर राख न हो जाये, पशु-पक्षियों में शिकार खोजने, बचने के साधन सिखाने, घर या घोंसले बनाने, कच्चा माँस खाने का सहज ज्ञान भरने से, प्रकृति में हर वस्तु की व्यवस्था से, नियमित रूप से दिन-रात के आने-जाने से, किसी दैवी शक्ति होने का संकेत अवश्य मिलता है। दूसरी ओर मौत क्या है यहाँ आकर सारा तर्क-शास्त्र समाप्त हो जाता है।"

"तुम्हारी बात में बहुत सार है किन्तु ईश्वर को देखने, पाने या दर्शन करने में ही न जाने कितने अनगिनत वर्षों की साधना व तप की आवश्यकता होती है, जो साधारण मनुष्य के बस से बाहर तो है ही उसके अतिरिक्त साधु लोग भी, जो कुछ वर्षों की घोर तपस्या के बाद कंकाल हो जाने की अपेक्षा तप में और कुछ नहीं पाते, वे भी अपने साथियों की

भाँति खीर हलवे में अपनी पाँचों उँगलियाँ घी में रख कर दिन-रात [illegible] की वृद्धि में जुट जाते हैं। दूसरी ओर यदि यह कहा जाये कि इश्वर सब लोगों में रमता है और सच्ची ईश्वर की पूजा करना अपने साथी मनुष्यों की सेवा में सलग्न रहना, व उनको अपनाना है, तो फिर इस जगह पर सारे मन्दिरों, गुरुद्वारों, मठों, मस्जिदों व गिरजों की आवश्यकता की सार्थकता नष्ट हो जाती है।"

"हाँ! बात तो तुम्हारी ठीक है किन्तु फिर···" उसी समय घड़ी देखते हुए श्रीमन बोला, "ओह! एक बज गया"। मुझे जरा कार्यालय में काम था, याद ही नहीं रहा। सम्पादक भी मेरी जान को रोता होगा। फिर कभी इस विषय पर बातें करेंगे। आज की बात बड़ी मज़ेदार रही।"

"हाँ! अगर तुम्हें काम है तो तुम्हें जाना ही चाहिए। इस विषय पर पहले भी मेरी एक दार्शनिक से वार्ता छिड़ गई थी। छः दिन तक सुबह से शाम तक काफी-हाऊस में बैठे तर्क-वितर्क करते रहे; पर फिर भी किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके। दोस्त! यह तो विषय ही ऐसा है।" श्रीमन ने अपनी बची हुई ह्विस्की को एक ही घूँट में गटका, राजन से हाथ मिलाया व बाल रूम के दरवाजे की ओर तेज कदम रखता हुआ बढ़ गया। श्रीमन को जाते हुए देख राजन बुदबदाया, "साले को पछाड़ दिया" और थोड़ा सा हँस कर ह्विस्की का एक हल्का सा घूँट भरा और हाल की ओर देखने लगा। हाल के एक कोने में एक अंग्रेज युवक व युवति बुरी तरह आलिंगन में बद्ध थे, व एक दूसरे को नशे में किसी की परवाह न करते हुए, बुरी तरह चूम रहे थे। राजन उनकी तरफ थोड़ी देर देखता रहा। न जाने क्यों उसे अपने पेरिस की रंगीनियों व अपनी दूसरी स्विस (Swiss) पत्नी की याद आने लगी।

पेरिस का 'स्नेहयुक्त, उन्मुक्त व सरस वातावरण जहाँ मादकता, उन्माद व मस्ती मुस्कराती और प्रणय–निवेदन के लिए सदा निमन्त्रण देती रहती है, एक ऐसी जगह है जहाँ कोई भी सम्भवतः सःचरित्र नहीं

है। यहाँ की दुश्चरित्रता व वासना का नग्न रूप असाधारण तौर पर प्रसिद्ध है। वहाँ की प्रेम-कहानियों से कौन नहीं अपना जी बहलाता। राजन के मन में आया कि वह उड़कर वहाँ पहुँच जाये। वहाँ की खूबसूरत शामों के लिए वह अब भी तड़प उठता था। वहाँ की सुन्दर रमणियों व अप्सराओं पर अब भी मरता था, जिनके उन्नत स्तन तथा उभरे हुए नितम्ब, काली चमकदार आँखें, मीठे होट, लाल-लाल गाल व पुष्ट मांसलता से भरे कोमल व गुदगदे शरीर होते थे। उसकी दूसरी पत्नी जिससे वह लन्दन में पहले मिला था, दूध सी सफेद थी। उसके शरीर का बनाव-कटाव बड़ा सुन्दर था व उसकी बड़ी-बड़ी पलकें किसी के भी अन्तर में गुदगदी पैदा करने के लिए काफी थीं। हम दोनों दो महीनों तक साथ रहे। फिर बाहर सैर करने को भी गये व जब हमारा प्रेम बढ़ गया तो पेरिस में जाकर शादी करा ली। उसके बाद पाँच छः महीने तो हम खूब मौज में रहे, किन्तु जब मैं एक अन्य लड़की की ओर आकर्षित हुआ ता उसने मेरे से तलाक ले लिया। उसकी पलकों की मुझे अभी भी बहुत याद आती है। वह मुझे नहीं छोड़ना चाहती थी। वह भारतवर्ष को भी देखना चाहती थी। वहाँ के लोगों में तब यह विचार था कि भारत के अधिकांश लोग जो बाहर सैर-सपाटे को आते हैं वे सब बहुत धनी होते हैं। इसी लिए वहाँ और कई लड़कियों ने भी मुझे घेरने का प्रयत्न किया था।

जब उसे पेरिस की इस घटना की याद आई तो उसे स्मरण हुआ कि उसने कहीं पढ़ा था कि अब ऐसा युग आ रहा है कि नारियाँ पुरुषों को खोजा करेंगी व घेरे डाल कर फँसा लिया करेंगी। वही आचार बाधेंगी, आदि कार्य करेंगी व मनुष्य को ढूँढेंगी व प्रेम करके विवाह करेंगी। अब उलटी गंगा बहेगी। तभी उसने देखा कि हाल में एक ओर बैठे प्रोफेसर की पत्नी कोने में छिप कर शराब पी रही है और वह अपने मित्रों से हँस कर बातें कर रही है।

"वैसे तो सेक्स-प्रवृति सब में होती है और कभी-न-कभा समय आने

पर किसी-न-किसी रूप में व्यक्त होती है, चाहे कोई इसको छुपाए रखने के कितनें ही प्रयत्न क्यों न करता रहे। ऐसे ही जैसे मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति अशिष्ट व असभ्य रहने की है। जब वह गाली-गलौच करता है तो प्रसन्न रहता है। जब सभ्य बनने का प्रयत्न करता है तो नाक-भौं सिकोड़ता है।

उसके अतिरिक्त आजकल के विज्ञापन, फिल्में, शिक्षा, पत्रिकाएं, भिन्न-भिन्न तस्वीरें व चित्र, समाचार पत्र व रेडियो का कार्यक्रम, सम्मेलन, व ड्रामे सब मिला कर हमारी सेक्स-प्रवृत्ति व यौन-आकर्षण को बढ़ाने में लगे हुए हैं। तो क्या यह स्वाभाविक नहीं कि साधारण मनुष्य जिनमें बुद्धि बहुत कम होती है, उनके कहने पर न चलें व अपनी सहज भूख नग्नरूप में न उतारें।

यह प्रश्न मानव के आगे अभी भी खुला पड़ा है कि क्या पेरिस के लोग अधिक बुद्धिमान नहीं कि वे इस युग के साथ चलकर, जहाँ मनुष्य के जीवन की अस्थिरता उसे बुरी तरह काठ रही है, खाने-पीनें व ऐश करने में रत रहते हैं। वहाँ के लोग जो हमें अधिक भद्दे, अशिष्ट व असभ्य लगते हैं वास्तव में अधिक प्रसन्न व उल्लसित नहीं ? क्योंकि मानव की सहज प्रकृति अशिष्टता में आनन्द लेना है।

: ४ :

मानव की प्रकृति का जब राजन को विचार आया तो उसे वे दिन भी याद आये जब वह लेखक बनने के प्रयास में अथक परिश्रम किया करता था। अनुभवों व वास्तविकता को ग्रहण करने के लिए वर्षा-अन्धड़ में नंगे-दलितों शोषितों व दरिद्रों की झोंपड़ियों व रेन बसेरों में जाता था। उनके अधमरे शरीरों व झोंपड़ियों व आँखों के रोदन से वर्तमान सभ्यता की प्रगति का अनुमान लगाता था।

दूसरी ओर भी भटकता था, उच्च समाज में, बड़े-बड़े होटलों व नाच-घरों में, उत्सवों में, वहाँ जहाँ कहीं भी उन्मत्त मनुष्य अपने को हंसी के कहकहों में चिन्ता-रहित फेंक देते हैं। मैं उस मादकता व मस्ती के अर्थ को समझने का प्रयास करता था। क्या लोग अपने दुःखों को भूलने के लिए ऐसा करते हैं या उसके पीछे और कोई प्रवृत्ति निहित रहती है ?

और मैं जाता था उन जगहों पर जहाँ लड़के-लड़कियाँ समाज के कठोर नियमों को तोड़ कर मिलते-जुलते व प्रेम करते हैं। समाज के इन कठोर नियमों से युवक व युवतियाँ तो तंग होते ही हैं साथ ही उसके विपरीत समाज को भी हानि पहुँचाते हैं। एक ओर तो उनके युवा रक्त पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, जिसके विरुद्ध वे एकान्त में मिल कर समाज पर अपना रोष प्रकट करते हैं। दूसरी ओर घर से बाहर निकलने के युवतियों पर प्रतिबन्ध से समाज के विभिन्न क्षेत्रों में जो उनसे बहु-मूल्य कार्य लिया जा सकता है उनसे समाज वंचित रह जाता है। संस्कृति की दिशा में ड्रामा, संगीत व अन्य कलाओं की वृद्धि में रुकावट आती

है। सामान्य क्षेत्रों में जहाँ हल्के-फुलके कार्य हों वहाँ स्त्रियों को बड़ी उपयोगिता से रखा जा सकता है। हज़ार पुरुषों की तरह हज़ार नारियाँ भी दुकानदारी का कार्य उतनी ही कुशलता से संभाल सकती हैं। जो मनुष्य हैं वे परिश्रम के, हल जोतने के, कठिन मानसिक उलझनों के कार्य करें। ऐसे संतुलित विभाजन से ही समाज में दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ रही जन-संख्या का कल्याण है। शेष बात रही कि कहीं लड़के लड़कियाँ बिगड़ न जायें, कुपथ पर न लग जायें। उसका सरल उत्तर यही है कि इस नारे को अपनाया जाये, युवक-युवतियों को किशोरा-वस्था में पदार्पण करने पर ही सेक्स की शिक्षा देकर समाज में स्वतन्त्रता से विचरने देना चाहिए। सेक्स की उचित शिक्षा बच्चों को किशोरावस्था के पदार्पण में दे-देनी चाहिए ताकि लड़के-लड़कियाँ कुकर्मों में न फंस जायें या जीवन में गलत मार्ग न अपना लें। कई मां बाप अपने बच्चों को जिनमें विशेषतया लड़कियाँ हैं, समाज में स्वतन्त्रता से विचरने की अनुमति नहीं देते। वे इसके बुरे परिणामों से घबराते हैं। किन्तु यदि उनको सेक्स के क्षेत्र में दक्ष व अनुभवी बना दिया जाये तो डरने की कोई बात नहीं। हर बच्चे में दमित व खुले आम न की जाने वाली बातों के सुनने व समझने के लिए सदा जिज्ञासा बनी रहती है, जो सहज स्वाभाविक वस्तु है। उनकी जिज्ञासा की पूर्ति ही समस्या का हल है। यदि अनुभवी बनाकर लड़के लड़कियों को समाज में विचरने दिया जाये तो समाज उनकी विभिन्न क्षेत्रों में सेवाएं प्राप्त कर सकता है, व उसके अतिरिक्त एक स्वस्थ वातावरण व परम्परा की नींव भी पड़ सकती है।

उन एकान्त जगहों पर जहाँ प्रेमी आपस में मिलते हैं, वहीं से संसार में मधुरता व विलक्षणता की उत्पत्ति होती है। प्रेम में मस्ती है, जीवन है, सुख है, शक्ति है। विश्वास है, क्रान्ति है, जादू है यदि वह किसी के दिल की धड़कनों में बस जाये। संसार के धन, दौलत व प्रसिद्धि को लात मार कर बड़े-बड़े लोगों ने प्रेम की भीख माँगी है। पुरातन गाथाएँ,

विश्व की अमर कहानियाँ, व कई भीषण संग्राम केवल मात्र प्रेम के लिए लिखे व लड़े गये हैं। फिल्मी गाने व कवि के गान, जो उन्हीं भद्दे दीखने वाले भावों का परिवर्द्धित रूप हैं, सब उसी के लिए बेचैन हैं। अपनी प्रेमिका की मधुर मुस्कराहट सारी कठिनाईयों व चिन्ताओं को दूर भगा देती है। जिन्होंने कभी प्रेम किया है, उन्हें पता है कि प्रेम की रंगीनियाँ क्या हैं ? प्रेमिका के समीप रहने का मोह, विरह की आहें, मिलन का आनन्द, प्रिय के लिये न्यौछावर करने की भावना, भविष्य की कल्पनाएँ व प्रिय की दृष्टि में अच्छा लगने की अभिलाषाएँ सब क्या हैं ?

भारतवर्ष में समाज के कठोर बन्धनों से प्रेम करने का सौभाग्य बहुत थोड़ों को प्राप्त होता है। यहाँ मनुष्य की दमित वासनाओं को बुरे कृत्यों से ही निकलने का रास्ता मिल पाता है। मां-बाप के कथनानुसार जिनकी बच्चों की भलाई की जगह दहेज़ में अधिक रुचि होती है, दो निरीह बालक-बालिकाओं को विवाह के बन्धन में बाँध दिया जाता है। जिन दो प्राणियों ने एक-दूसरे को कभी देखा नहीं उन्हें एक साथ जीवन काटने की विवशता होती है—उनमें प्रेम का अंकुर कैसे फूट सकता है। क्या यह युवक-युवतियों के प्रति अपराध नहीं ? इसीलिए यहाँ मनुष्य पहले बुरे कामों की पकड़ में और शादी के बाद फिर बच्चों को पैदा करने में और पालने में अपना जीवन बरबाद करता है। वह अपनी प्रसन्नता, स्वतन्त्रता, व्यक्तित्व का विकास व अभिलाषाएँ परिवार की देख-रेख के लिए त्याग देता है। समाज की रूढ़ियों व लोक निन्दा का भय दो शक्तिशाली अस्त्रों के समान सदा पीछे लगकर उसे इन कुकर्मों के प्रति उसकी निष्ठा बनाये रखते हैं।

इसीलिए यहाँ प्रेम की महत्ता को बहुत कम पहचाना है व आधुनिक हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में उस मधुर प्यार का वर्णन किसी ने भी सफलतापूर्वक वर्णन नहीं किया। कुछ लोगों ने प्रयत्न किया है किन्तु उनको गद्दीधारियों ने दबा दिया है।

प्रेम व सौन्दर्य एक सत्य वस्तु है, उसमें शक्ति है, इसमें कोई शंका नहीं। किन्तु विश्व के आदिकाल से आधुनिक लेखकों तक जब कभी उन्होंने पात्र चुने या कुछ लिखा, तो उन सब में यह बताया कि जब कभी वे पात्र कुछ करते तो उनका उस कार्य में जी न लगना व मरण तक वह अपनी प्रेमिका की याद व साथ रहने के कायल रहते। अगर यह बात होती तो संसार में कभी बहुमुखी प्रगति न हो पाती क्योंकि हर समय सब लोग अपनी प्रेमिकाओं के बारे में सोचते रहते थे। मेरी यह पक्की धारणा है कि प्रेम एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य में समयानुसार उठती है व संयोग की सहज प्रवृत्ति के पूर्ण हो जाने के बाद समाप्त हो जाती है। तब मनुष्य सन्तुष्ट हो दूसरी ओर नज़र मारता है और वहीं से दूसरी दिशाओं में प्रगति को जन्म मिलता है।

यदि प्रेम का वास्तविक रूप देखना है तो हमें नारी को लेना पड़ेगा। नारी जिसको कुछ सौंप देती है वह सदा के लिए सौंप देती है। उसमें एक अन्धविश्वास होता है जो सदा अडिग व अटूट रहता है। उसके अन्तर में सदा एक टीस बनी रहती है जिससे प्रेम करने की अद्भुत क्षमता का उसके अन्तर में विकास होता रहता है। नारी हर कार्य को बड़े सोचने-विचारने के बाद करती है। सामान्यतया नारी मनुष्य से नहीं वरन् उसके पैसे, बुद्धि या शरीर से प्रेम करती है। इतना समझ लेना काफ़ी नहीं—क्योंकि नारी हृदय की विलक्षणता व उसके रहस्यों की खोज निकालना कोई सरल कार्य नहीं। यही बात है कि इतने परिणामों में पहुँचने पर भी समाज में ऐसी तितलियाँ भी पाई जाती हैं जिनसे प्रेम करके उनका कुछ नहीं बिगाड़ा जा सकता। जो तुम्हें विपथ पर डाल कर भी आप हँसने-खेलने में चिन्तारहित डूबी रह सकती हैं।

"क्या यही हाल मेरी पत्नी के साथ नहीं ? अपना पत्नी की याद करने पर उसने बालरूम में देखा तो वहाँ उसका नाम-निशान नहीं था।

वह अवश्य अपने किसी प्रेमी के पास गई होगी। नीच, सदा अनैतिक कार्यों में संलगन रहती है ?" किन्तु उसको उसी समय यदि आया कि वह क्या कम है। अगर शशी अपने प्रेमी के पास जाती है तो उसमें उसका क्या कसूर है ? मैं भी तो अपनी दार्शनिकता में मस्त रहता हूँ। उसके अतिरिक्त मैं भी तो गन्दी जगहों पर जाता था, मित्रों के साथ आनन्द उड़ाता था। यदि इन सबका शशी को पता लग जाये तो क्या वह दुःखी नहीं होगी ? औरतों को मनुष्य बंगले में बन्द रखता है जबकि वह आप हर जगह जाता व हर वस्तु का आनन्द उड़ाता है। यह ठीक है कि शादी के बाद पुरुष व स्त्री का आकर्षण धीरे-धीरे घटना आरम्भ हो जाता है व उनकी रोचकता दूसरों में अधिक हो जाती है। दोनों की भलाई इसी में है कि एक-दूसरे के हितों का ध्यान रखें जिससे गृहस्थी की गाड़ी ठीक प्रकार से चल सके।

"मैंने इन सब वस्तुओं का वर्णन किया था तभी लोगों ने मुझे दुतकारा। उसके अतिरिक्त शराब व लड़कियों का चक्कर मुझे ले डूबा। तभी मैं सफल लेखक न बन सका। इस दुतकारने, दबाने व नवीनता को न आने देने की प्रवृत्ति से हम साहित्य के वातावरण को नहीं सुधार सकते। सर्वप्रथम हमें अपने संकुचित घेरे व ओछेपन की प्रवृत्ति को त्यागना है। दूसरे हमें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनाना है, उच्च आदर्शों का विकास करना है व मानवता के हित को सर्वोपरि रखते हुए जनता को अच्छा उपयोगी व रोचक साहित्य प्रदान करना है। हमें विश्व-बन्धुत्व, शान्ति, समानता, स्वतन्त्रता, व देशों के परस्पर सहयोग व मैत्री को बढ़ाने के लिए लिखना है। इसके लिए हमें दूसरे देशों में फैले हुए विचारों को समझना है। दूसरे देशों के चित्रण से व उनकी दशा का भारतीय दशा से तुलना करके हम देख सकते हैं कि अमुक राष्ट्र को हम क्या दे सकते हैं। योरुप में ऐसा कई लेखकों ने किया है। क्या हम ऐशिया में इस चीज़ को नहीं दोहरा सकते ?

हमारे यहाँ से संसार के लगभग सब देशों में भारतीय बसे हुए हैं। अफ्रीका में, इंगलेंड में, फ्रांस में, अमेरिका में, वेस्ट इण्डीज़ में, रूस में, अरब देशों में भारतीय बहुत संख्या में रहते हैं। क्या उनका हमारे लिए कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि वह आँखों से ओझल हो चुके हैं। इसलिए हम उन्हें हृदय व मस्तिष्क से भी दूर हटा लें। वह भी और जातियों की भाँति बालरूमों में जाकर आनन्द लेते हैं, वह भी अंग्रेज़, फ्रांसीसी, स्पेनिश, स्विस युवतियों से मिलते हैं। उनके भी प्रेम व्यवहार होते हैं, उनकी आशाएँ व अभिलाषाएँ होती हैं, कुछ तो वहाँ शादी कर बस जाते हैं व कुछ अपने देश का मोह न छोड़ सकने से वापिस आ प्रसन्न पूर्वक रहते हैं। क्या हमारे भाइयों के इन कामों से हमें कोई सरोकार नहीं ? और कुछ नहीं तो हमें अपने एशिया में रहने वाले लोगों के लिए तो लिखना ही चाहिए जो हमारे निकट सम्पर्क में आते रहते हैं।

हमें अपने वर्णनों में यह दिखाना है कि भारतीय किसी जाति से कम नहीं—उनके भी हर क्षेत्र में हीरो (नायक) होते हैं वे जो कुछ भी करते हैं उस सब में कुछ-न-कुछ भारतीयता की छाप अवश्य रहती है, जिसके लिए उन्हें गर्व होना चाहिए। हमें यह भी दिखाना है कि जो युवक या अन्य लोग यहाँ से बाहर जाते हैं वे अपने देश का सच्चे अर्थों में प्रतिनिधित्व करते हैं कि नहीं ? वह वास्तव में अपने देश के सच्चे प्रतिनिधि तभी बन सकते हैं यदि वे अपने देश, जाति व उसके गौरवमय अतीत से उन्हें सच्ची श्रद्धा हो और अवसर आने पर वह उसका जी खोलकर वर्णन करें व उसको व्यवहार में लाय। इस सब के लिए हमें अपने दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर मोड़ना होगा।

दूसरे देशों में हमारे साहित्य का ज्ञान नाम मात्र है और जो आदान-प्रदान भी होते हैं वे भी पुस्तकालयों तक सीमित रह जाते हैं। अभी भी वैस्ट इण्डीज, अमेरिका, योरुप, एशिया व नागा क्षेत्र में कई ऐसे

स्थान पाये जाते हैं जहाँ हिन्दी व संस्कृत के पंडित मिलते हैं। वहाँ बहुत पहले बसे भारतवासियों द्वारा वहाँ के कुछ लोगों ने भारतीय संस्कृति ने धार्मिक ज्ञान की भूख मिटाने के लिए वेदों व अन्य पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वहाँ पर अभी भी नागरी लिपि के प्रेमी बसते हैं। वहाँ के भारतीय मित्रों के सद् प्रयत्नों व सहयोग से यदि हम प्रयत्न करें तो बाहर के देशों में भारतीय संस्कृति व साहित्य की संस्थाएँ खोली जा सकती हैं, जो पुस्तकों की बिकरी पर चलें व हमारा दूसरे देशों से सम्पर्क व आदान-प्रदान बढ़ाएँ। हमें यह भी प्रयास करना चाहिए कि ऐसी संस्थाएँ परस्पर सहयोग, मैत्री एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान व विचार-विनिमय पर अधिक बल दें, जिनसे लेखकों व विद्वानों को बाहर जाने का अवसर मिले व उनका दृष्टिकोण अधिक व्यापक बन सके। हम अपने साहित्य को उनकी भाषाओं में छपवाएँ, जिनसे उनका हिन्दी साहित्य के प्रति प्रेम जागे। जिन पाठकों को हिन्दी में श्रद्धा हो उनको हिन्दी पढ़ाने का प्रबन्ध भी करना चाहिए जिससे पाठक किसी ग्रन्थ का मूल भाषा में आनन्द ले सकें। यदि हम दूसरे देशों के बारे में लिखें, जैसे उनके लेखक लिखते हैं तभी हमारा साहित्य बाहर प्रसिद्ध होगा व विदेशों में भारतीय लेखकों का आदर व मांग होगी। सच मानिए विदेशों में हमारे लिए बहुत-कुछ लिखने को पड़ा है। आज हमें राजनीति व वादों के चक्कर को छोड़कर देश एवं काल की संकुचित सीमाओं को त्याग कर, स्वतन्त्रता से लोगों को अच्छा उपयोगी व रोचक साहित्य प्रदान करना है। यह उन देशों पर अपने साहित्य को ठूँसना कदापि न होगा क्योंकि वहाँ के लोगों में भारतीय संस्कृति, साहित्य व शान्ति के सदप्रयत्नों के लिए आज भी श्रद्धा विद्यमान है।

इस सबके लिए हमें अपने आलोचना साहित्य को ऊँचे स्तर पर लाना है। उसकी वृद्धि के लिये प्रयत्न करने हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो आजकल इतना कुछ लिखा जा रहा है कि उस सब की आलोचना करना

बहुत कठिन होता जा रहा है। इससे लेखक छोटी-मोटी सस्ती पत्रिकाओं से अपनी पुस्तकों की आलोचना करवा लेते हैं जिससे पाठक एवं उपन्यासकार दोनों अन्धेरे में रह जाते हैं। दूसरे सामान्य पाठक की परख इसनी तीखी नहीं होती कि वह किसी भी पुस्तक के विचारों व उसके पीछे लेखक के उदगारों व गूढ़ रहस्यों को पहचान सके। तीसरे विदेशी पाठकों व विद्यार्थियों के लिए यह आलोचना बड़ी सहायता का कार्य करेगी। उन्हें भारतीय परम्पराओं, लेखक के व्यक्तित्व व पुस्तक के महत्व को समझने में सरलता होगी। चौथे हमें भारतवर्ष में सामान्य मनुष्य की साहित्य में रूचि पैदा करनी है। आज का साधारण मनुष्य हिन्दी को पंडितों व धर्मातमाओं की भाषा समझता है, जिसमें केवल रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थ लिखे जाते हैं। यह वास्तव में उसके अज्ञान व हिन्दी साहित्य के प्रति अरूचि है। जब तक उसकी रूचि साहित्य की ओर उभारने में सफल नहीं होते हमारा कार्य अधूरा रह जाता है। इसलिए भी आलोचना-साहित्य का आज बहुत महत्व है।

यह भार सदा आलोचकों के कन्धे पर होता है कि वे पाठक को किसी भी कृति के गौरव का ज्ञान करायें व उसके साथ लेखक का मार्ग-दर्शन भी करें। आज हमें साधारण लेखक को सन्मार्ग पर लाना है। इसके लिए हमें आलोचकों की एक ऐसी सेना तैयार करनी है जो आज के गम्भीर वातावरण को समझकर सुधारें।" वह इन्हीं बातों में उलझा रहा।

: ५ :

साहित्य-क्षेत्र पर विचारते न जाने क्यों उसका ध्यान देश की वर्तमान चिंताजनक स्थिति पर आकर रूक गया । सम्भवत: भारतीय होंने के नाते ऐसा होना तो स्वाभाविक था । राजन् ने अपनी जेब टटोली उसमें समाचार-पत्र तह किया पड़ा था । आज ही समाचार पत्र में देश की वर्तमान चिंताजनक स्थिति पर एक महत्वपूर्ण लेख निकला था। राजन् उसको पढ़ने लगा । देश की अवस्था बहुत गम्भीर हो चुकी है। एक ओर दिन-प्रति-दिन वृद्धि कर रही जन-संख्या का दूसरी और खाद्य-समस्या, इधर अर्थ व्यवस्था में गड़बड़ वा उधर ऋण की समस्या, देश के अगामी कर्णधारा युवकों में बढ़ रही अनुशासनहीनता, धर्म में खोट चारों ओर बढ़ रही अनैतिकता, सार्वजनिक क्षेत्रों में कामचोर, नफाखोर, बलैकिये, टैक्स न देने वाले, भ्रष्ट पदाधिकारी या अफ़सर, देश में बड़ रहे व्यभिचार, अत्याचार व भ्रष्टाचार के द्योतक का सबल प्रमाण हैं । कहाँ एक ओर देश में लग रहे प्रगति के नारे और कहाँ यह गिरावट की अवस्था । क्या हो गया है हम को व, हमारी नैतिकना को, उच्च आर्दशों या हमारी प्राचिन सभ्यता को जिसकी हम सदा दुहाई देते रहते हैं ।

संयुक्त राष्ट्र की एक विशेष रिपोर्ट के अनुसार विश्व की जन-संख्या इस सदी के अन्त तक आज से चार गुना हो जायेंगी। इसका तात्पर्य यह निकला कि यद्यपि मनुष्य ने दो अरब पचास चरोड़ जीवों को दो लाख वर्षों में उत्पन्न किया, किन्तु अब वह दो अरब जीवों को केवल तीस सालों में पैदा कर देगा । इस सदी के आरम्भ में एक यूरोपवासी के

बदले दो ऐशिया वासी थे, किन्तु इस सदी के अन्त तक अनुपात एक के बदले चार हों जायेगा।

ऐशिया में भी भारत व चीन को इस गम्भीर खतरे का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि इन्हीं देशों की जन-संख्या सबसे अधिक वृद्धि पर है। यदि जन-संख्या की वृद्धि इसी तरह होती रही व देश के नेता दरिद्रता को हटाकर जन-संख्या की वृद्धि को अपने साधनों तक सीमित न रख सके तो आगामी पच्चीस तीस वर्षों में मानव के जीने का या अस्तित्व का प्रश्न उठ खड़ा होना स्वाभाविक है। हाँ यह भी सम्भव है कि तब तक भीषण परिस्थितियों के आवरण में उकता कर या तंग आकर मनुष्य अपने जीने की इच्छा को ही लात मार दे। तब उस दशा में पृथ्वी पर मानव जीवन का इतिहास व उसके विकास का कोई अर्थ नहीं रहेगा।

हमें जन-संख्या के प्रश्न को गम्भीरता से देखना है। यह हमारे अस्तित्व का प्रश्न है ? क्या हम नहीं चाहते कि मानव जीये या अपने आदर्शों को लेकर विकास के पथ पर अग्रसर हो ? यदि हम सब यह चाहते हैं तो हमें जन-संख्या की वृद्धि को एक दम रोकना है। यह हमारी भविष्य की पीढ़ियों के लिए सरासर अपराध है। इस जन-संख्या की बढ़ोत्री ने ही अन्य कई समस्याओं को जन्म दिया है। खाद्य समस्या, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार यह सब इसके व्यापक परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति को तो इसने पूर्ण विराम लगा दिया है। जिधर थोड़ी सी प्रगति हुई उधर उतनी ही जन संख्या बढ़ गई जिससे लोगों के जीवन-स्तर में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं हो सकता। जन-संख्या की वृद्धि को रोकने के लिए हमें यथासम्भव प्रयत्न करना है। विलम्ब विवाह, परिवार-नियोजन, शिक्षा का फैलाव, दूसरे अन्य उपायों से संयम, ये कुछ उपाय हैं। किन्तु हम तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक गांव गांव में जाकर हम लोगों को समझावें कि वह जन-

संख्या की वृद्धि कर अपने पांव पर आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। इस समय भारत में प्रति मिनट १४ बच्चे पैदा हो रहे हैं।

इस जन-संख्या की वृद्धि से खाद्य-समस्या बार-बार राक्षस के समान लोगों को हड़पने के लिए साकार हो जाती है। गत बारह वर्षों से हम अनाज को विदेशों से खरीद-खरीद कर लोगों के मुंह भर रहे हैं। इस पर भी अनेक अनाज की दुकानें व बैलगाड़ियों से अन्न लूटने के समाचार मिले हैं। इससे खाद्य-संकट की गम्भीरता का अनुमान लगाया जा सकता है। यह बाहर से मंगाने की स्थिति कब तक रहेगी ?

"अधिक अन्न उपजाओ जिसमें काफी धन प्रति वर्ष व्यय होता था ऐसे आन्दोलनों का क्या परिणाम निकला, यह जनता को पूछने का पूरा अधिकार है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार आजकल उत्पादन बढ़ रहा है। फिर खाद्यान का संकट क्यों ? दूसरी ओर देश की ऐसी गम्भीर स्थिति व खाद्यान की महंगाई में भी व्यापारी वर्ग धन कमाना चाहते हैं। वे गोदामों में अनाज दबाकर, नकली कमी पैदा कर, महंगे दामों पर अनाज बेच देते हैं। इस बुरी वृत्ति के खिलाफ सरकार को कार्यवाही करनी चाहिए। उसके अतिरिक्त खाद्य-उत्पादन बढ़ाने के लिए किसानों को बीज, खाद व अच्छे औजारों की सहायता से प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि हम खाद्य के सम्बन्ध में आत्म भरित हो जाएँ, जिससे दूसरे क्षेत्रों में प्रगति का मार्ग खुले। यदि हमने खाद्य-समस्या को सफलता पूर्वक न सुलझाया तो बढ़ रही जन-संख्या एक भीषण खतरे व संकट का रूप धारण कर लेगी, जिसके आसार अभी दृष्टिगत होने लगे हैं।

इस भारी जन-संख्या से स्कूल व कालेज विद्यार्थियों से खचाखच भरे रहते हैं। इससे बेरोजगारी व अनुशासनहीनता की समस्याएँ भयंकर रूप धारण कर रही हैं। हमारे विश्व-विद्यालयों में पैसे देकर शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति से फ़ेक्ट्रियाँ मात्र रह गई हैं जहाँ कुंजियों व गाइडों को घोट कर स्नातक की डिग्री प्राप्त की जा सकती है। सामान्य भारतीय

विद्यार्थी के लिए वर्तमान शिक्षा-पद्धति बहुत महंगी है। जब एक विद्यार्थी पढ़ने को जाता है तो वह माता-पिता पर एक भार है, जो वह अपने बच्चों की भलाई के लिए झेलते हैं। किन्तु क्या वह माँ-बाप का न्योच्छावर होना सरासर अज्ञानता नहीं ?इस समय भारतीय विद्यार्थी एक विचित्र सी अवस्था में है। जितनी छात्र-छात्राएँ गत वर्षों में बढ़ी हैं उतने अध्यापक नहीं और जो बढ़े भी हैं वे योग्य नहीं। इस फीस-शिक्षा पद्धति से गुरु-शिष्य सम्पर्क जाता रहा। ऊपर से अध्यापकों का सदप्रभाव व छत्र-छाया उठ गया जिससे अनुशासन हीनता का आना स्वभाविक था। एक और मानसिक कारण यह है कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद विद्यार्थियों के पास कोई लक्ष्य नहीं रहा। स्वराज्य से पहले राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की भावना सर्वोपरि थी। अब विद्यार्थी अपने को उद्देश्यहीन समझते हैं। इसके अतिरिक्त भविष्य की अनिश्चितता नैराश्य कर देती है। उससे विद्यार्थी अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है व अनुशासनहीनता की ओर प्रवृत्त होता है। अनुशासनहीनता व टीनएज (Teen age) समस्याएँ भारत में ही नहीं कई और देशों में भी राष्ट्रव्यापी समस्याएँ बन चुकी हैं। सरकार को राष्ट्र के भावी कर्णाधारों के लिए अवश्य कोई ठोस योजना व कार्यक्रम बनाना चाहिए जिससे विद्यार्थी ठीक मार्ग पर आ सकें।

वास्तव में श्रेष्ठ शिक्षा वही है जो विद्यार्थी के मन में ज्ञान के लिए जिज्ञासा व उच्च खोजो के लिए रोचकता जगा दे। उसके चरित्र का उत्थान करे व उसके मस्तिष्क को ऐसे स्तर तक पहुँचा दे जहाँ वह किसी भी विषय के गुण-दोशों को परख सके।

युवकों की इस व्यापक अनुशासनहीनता से जनतन्त्र को खतरा है। पहले ही आज के युवक व अन्य लोगों की प्रवृत्ति उपद्रव, लड़ाई-झगड़े, लूट-पाट व हड़ताल करने की है जो स्वराज्य प्राप्ति से पहले की बनी हुई है। उससे एकदम जो प्रजातन्त्र राज्य के पूर्ण उत्तरदायित्व का भार

हमारे कन्धों पर आ पड़ा है उसको निभाना ज़रा कठिन हो रहा है। हमें शक्तिशाली प्रजातन्त्र राज्य की नींव रखने के लिए अपने उत्तरदायित्व को, अनुशासन को, प्रयोजन व लक्ष्य को समझना होगा। हमारी शासन पद्धति दिन प्रतिदिन भ्रष्ट व सरकार की नीति बहुमत के मद में राष्ट्र का हित छोड़ रही है। इसको ठीक करने के लिए हमें देश में आज एक रचनात्मक विरोध को पनपने का अवसर भी देना है। बुद्ध से गाँधी तक जो हमने दार्शनिक, नैतिक व धार्मिक क्षेत्रों में उत्थान किये, उनकी याद से आज भी हमारा सिर ऊँचा उठ जाता है। किन्तु उससे जो हमारी जाति में निर्बलताएँ आईं उन पर बहुत कम लोगों का ध्यान गया। पहले इस धर्म व अहिंसा के मार्ग को अपनाने से हमारी जाति इतनी कमज़ोर होती चली गई कि अंग्रेज़ों से हमें और सूरत न बनने पर अहिंसात्मक युद्ध लड़ना पड़ा। दूसरे उससे सामान्य मनुष्य का दृष्टिकोण संकुचित, बुद्धिहीन व कट्टर सिद्धान्तवादी हो गया है। आजका मनुष्य भेड़ चाल की तरह जैसे वह अपने नेताओं के प्रवचनों के पीछे चलता था अब भी उसी प्रवृति को बनाये हुए है। वह आलोचक न रह कर जैसा कहो वैसा ही करने को प्रस्तुत रहता है। इससे प्रगति सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त इस संकुचित दृष्टिकोण में निष्ठा रखने से भारतवासी रूढ़िप्रिय रहा। उसका देशव्यापी दृष्टिकोण न बन सका, जिससे भारतवर्ष में सवाजवाद का बीज बहुत देर तक बोया न जा सका। उसकी हानियों से आज हम भली-भाँति परिचित हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हम परम्परागत धार्मिक व अहिंसात्मक दृष्टिकोण को नष्ट कर दें। पर हमें उसकी बढ़ती हुई निर्बलताओं के प्रति जागरूक रहना है। यदि ऐसा न हुआ तो भारत का गौरवमय अतीत जो हमारे पास केवल मात्र घमंड व डींग मारने की वस्तु है, उससे भी हाथ धोने पड़ेंगे। हम हर जगह अपने उज्ज्वल प्रतापी, तेजस्वी व गौरवमय अतीत की प्रशंसा करते रहते हैं। क्या हमारे जीवन की सार्थकता इसमें नहीं कि हम आज के वातावरण को अपने गौरवमय अतीत के समान बनायें।

आज देश की क्या अवस्था है ? उसकी प्रजातन्त्र-पद्धति, एकता व स्वतन्त्रता खतरे में है। आज जनसमुदाय तुच्छ व स्वार्थी हितों को देश के हितों से पहले गिनते हैं। वह अपने व्यवसाय, हित व अपने परिवार के सुख चैन को राष्ट्र की आवश्यकताओं से ऊपर गिनते हैं। आजकल हर क्षेत्र में कार्य ढूंढ़ने की व शक्तिशाली बनने की होड़ सी लग रही है। हमारी सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ व जात-पात के बन्धन सहस्त्रों वर्षों की दासता के बल पर हमें आज तक खा रहे हैं। आज नग्न दरिद्रता का व्यापक दृश्य जन-संख्या की वृद्धि से और अधिक भयानक बन रहा है। क्या यही नहीं है हमारी वास्तविक दशा ? किन्तु इसके विपरीत सरकार समाचार पत्रों, रेडियो, सार्वजनिक शिक्षा एवं फिल्मों द्वारा लोगों में यह हल्ला मचा रही है कि हम सब प्रगति और विकास की ओर द्रुत गति से जा रहे हैं। फिल्म डाकुमेन्टिरियों में दिखाया जाता है कि गाँव में हर बच्चे को दूध पीने को, बस स्कूल ले जाने को, घर रहने को, नर्स व डाक्टर चिकित्सा को, व उद्यान खेलने को मिलते हैं। कहाँ है इस फिल्म की सत्यता ? एक दल को शक्ति के मद में या वोट प्राप्त करने के लालच में जनता को बहकाने या धोखा देने का कहाँ तक अधिकार है ?

हमारे देश का यह चित्र बड़ा उदास व निरुत्साहित प्रतीत होता है किन्तु हमें घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। आजकल ऐसी योजनाएँ बन रही हैं जो देश का शीघ्र ही चित्र बदल देंगी। हमें अपने जात-पात के बन्धनों को तोड़कर देश के प्रति वफादार हो जाना चाहिए। हमें स्वार्थ-हितों व जाति की आवश्यकताओं को त्याग कर राष्ट्र का हित सर्वोपरि रखना चाहिए। हमें अपनी योजनाओं व राजनीतिक, सामाजिक संस्थाओं को साधारण मनुष्य के कल्याण को केन्द्र-बिन्दु बनाकर चलाना है। सामान्य मनुष्यका स्वास्थ्य, प्रसन्नता व समृद्धि ही वास्तविक प्रगति है।

सामान्य मनुष्य के बारे में सोचते हुए न जाने क्यों राजन को यह ख़याल आया कि अब उपयुक्त समय आ गया कि हम सब भारत के लोग अचकन और चूड़ीदार पाजामा, धोती कुर्ता या जो कुछ भी अधिकृत गणवेष हो उसको पहनना आरम्भ कर दें ··· ······किन्तु वह उसी समय हँसा और विचारों की शृंखला के टूट जाने के डर से फिर भारतीय परिस्थितियों के बारे में सोचने लगा। हमारे द्रुत गति से विकास करने की कामना से, परिस्थितियों की अनुभवहीनता से व दोषपूर्ण आयोजना से आज भारत में विदेशी मुद्रा संकट आ खड़ा हुआ है। उसके साथ ही दूसरी पंचवर्षीय योजना के लिए रुपये की कमी भी। वे रुपये हम विदेशी सहायता, उधार व कर्ज़ के रूप में ले रहे हैं। इस विदेशी सहायता से देश पर बुरा असर पड़ने का खतरा है। आर्थिक क्षेत्र में भावी अर्थ-व्यवस्था के बिगड़ने व राजनीतिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता सीमित हो जाने का डर है। दूसरीं ओर जो विदेशी सहायता हमें कर्जो और उधार के रूप में मिली है उसके अधिकांश भाग को थोड़े ही समय में लौटाना पड़ेगा। इस ऋण के भुगतान के साथ हमें तीसरी पंचवर्षीय योजना के लिए विदेशी मुद्रा की कमी पड़ेगी। उसके साथ ही जो हम विदेशी ऋण बढ़ा रहे हैं उसका बड़ा भाग वास्तव में उपभोग व्यय के लिए हैं अतः उसके द्वारा हमारे घरेलू उत्पादन में ऐसी कोई वृद्धि नहीं होगी जिसके फलस्वरूप हमारी निर्यात-आय में वृद्धि हो सके व ऋण दे सकने में सहायता मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ओर बहुत गम्भीर स्थिति बन चुकी है और दूसरी ओर हम प्रतिजन राष्ट्रीय आय दुगनी करने की योजनाएँ बना रहे हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमें विकास को छोड़ देना या कठिनाइयों से विचलित हो जाना है। हमें कठिनाइयों का डट कर सामना करना है व उनको हराना है व किसी भी योजना में कोई भी कमी नहीं आने देनी है। वास्तव में ये योजनाएँ भारत जैसे

विशाल देश के लिए बहुत छोटी हैं। इनको पूरी करने के लिए अभी कई वर्षों तक विदेशी मुद्रा की काफ़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ेगी, उसके लिए हम विदेशी सूत्रों की उपेक्षा और देश के साधनों को ढूंढना है। देश में घरेलू खपत कम करके निर्यात बढ़ाना व आयात को घटाना है। जितनी जल्दी हम इस बात को हृदयंगम कर लेंगे कि घरेलू बचत द्वारा ही विदेशी मुद्रा के साधन जुटाना सम्भव है यह देश के हित के लिए उतना ही श्रेष्ठकर होगा। दूसरी ओर हमें अपनी पैदावार बढ़ानी है जिससे अन्न के लिए हम विदेशी सहायता के लिए न ताकें व विदेशी सहायता को अन्तिम सहारा मानें, जब कोई और सहारा न रहे।

उसी समम राजन ने समाचार-पत्र को मेज़ पर रख दिया व कुछ सोचने लगा। न जाने क्यों उसे इतिहास के उस स्वर्ण-पृष्ठ की याद आने लगी जब लोगों ने अनंगपाल व गज़नी के परस्पर युद्ध में अनंगपाल को अन्न-वस्त्र व धन से सहायता दी थी। बूढ़ी माताओं ने जिनकी शेष आयु तब आराम के लिए थी, अथक परिश्रम कर सूत काता व उसके पैसों से अन्न मोल लेकर रणक्षेत्र में भेजा। नव-विवाहिता स्त्रियों ने जिनकी अभी माँग का सिन्दूर भी नहीं उतरा था, उन्होंने अपने जेवरात नयें-नये ऊनी व रेशमी वस्त्रों को बेच कर उससे अन्न, वस्त्र व अस्त्र लेकर रण-क्षेत्र में भेजे। बूढ़ी माताओं व नव विवाहिता स्त्रियों ने अपने बच्चों व पतियों को रणविद्या व अस्त्र-शस्त्र में दक्ष होने के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन दिया। वे सब-किसी के आधीन रहना नहीं चाहते थे। उन स्वतन्त्रता के पुजारियों का उदाहरण क्या स्तुत्य व अनुकरणीय नहीं? वे अपने को न्यौछावर कर रहे थे ताकि भविष्य की पीढ़ियाँ दासता की जंजीरों में न जकड़ी जायें। हमें भी आज समाज में उस भावना को जन्म देना है जो अनंगपाल के सयम में थी। जो लोगों को देश की प्रगति और विकास व किसी संकट के समय में एक कर दे। क्यों न हम भी आज देशवासी आज सब इकट्ठे होकर तन-मन-धन से देश की सेवा में रत हो

जावें। हम अपने को न्यौछावर कर दें ताकि हमारी भावी पीढ़ियाँ सुख-चैन से जी सकें। आज भी हमारे भारतवासियों ने सोने व धन को एकत्रित कर धरती के नीचे घड़ों से डाल कर गाडा हुआ है और कुछ ने लाकरों में बन्द किया हुआ है। हम अपने रीतिरिवाज़ों, जात-पाँत के बन्धनों, अपने सुख व आरामों के लिए व्यय करते हुए कभी नहीं हिचकते। किन्तु जब कभी राष्ट्र का प्रश्न आता है तो हम दुबक कर बैठ जाते हैं या मुँह मोड़ कर अपनी अनभिज्ञता स्पष्ट कर देते हैं। यदि आज हम फिर अनंगपाल के समय की क्रान्ति को व उस भावना को मूर्तिमान कर दें व अन्न-वस्त्र-धन से प्रगति व विकास के लिए सहायता करें तो यह मुद्रा संकट की समस्या तो क्या सब समस्याएँ अपने आप हल होती चली जाएँगी। हमारी जीत इसी में है कि हम उस क्रान्ति को दुबारा दौहरा दें क्योंकि संगठन में शक्ति है व पाताल तक पीछा न छोड़ने वाली समस्याओं के हल का पराक्रम। एक ओर जब हम ऐसे ऊंचे विचारों को लेकर चलते हैं व दूसरी ओर लोगों को सर्वत्र भ्रष्टाचार में संलग्न देखते हैं तो हृदय क्षोभ व ग्लानि से भर उठता है। आजकल देश में गुण्डागर्दी व दुष्ट प्रभावों ने सब क्षेत्रों में आतंक मचाया हुआ हैं। राजनीति में पक्षपात, धर्म में कृत्रिमता, साधारण व फिल्मी जीवन में अनैतिकता, साधारण जीवन उपयोगी वस्तुओं में खोट से ही आज का राजनीतिज्ञ ब्लैकिया, टैक्स न देने वाला, नफाखोर, कामचोर व्यक्ति सुखी हैं व फूल कर कुप्पे होते जा रहे हैं। देश में कई लोग हिसाब में ऐसे दक्ष मिलेंगे कि हज़ारों रुपया अपने बहीखातों में ऐसे समेट लेंगे कि एक पैसा भी आय कर न देना पड़े। इन्हें बचपन से ही ऐसे कार्यों में दक्ष किया जाता है। उसके अतिरिक्त आज गुण्डों के गिरोह तस्कर व्यापार, दंगा-फसाद, व अनैतिक कर्म खुले आम करते हैं। हनुमान की मूर्ति में अफीम, ज़ुकाम के रुमाल में हीरे, साईकिल के हेंडल में सोना, मुर्दों की अर्थियों में रेशम के गठरे, तस्कर व्यापार के सबल प्रमाण हैं।

जिन जगहों पर मद्य-निषेध की गई है वहाँ कितनी शराब अवैध बनती है व बिकती है। व कर की जो हानि होती है उसका अनुमान लगाना कठिन है। गुण्डों के अड्डों पर गाँजा, अफीम, चरस खुले आम मिलती है। डाकुओं के पुलिस से मिलने के समाचार मिले हैं व धनी लोगों के उनकी पीठ पर होने के भी प्रमाण मिले हैं। गुण्डों के व्यवस्थित दल विधवा आश्रम के पीछे वहाँ की लड़कियों को अनैतिक कर्म करवाते पकड़े गये। इसके अतिरिक्त किसको पता नहीं कि वेश्यावृत्ति बन्द करने के बाद भी लुक-छिप कर सब काम होते हैं व जनता के काफ़ी प्रोत्साहन में मेरठ, आगरा, लखनऊ व अन्य कई प्रदेश वैश्याओं के केन्द्र बिन्दु बन रहे हैं। दिल्ली में भी ऐसी बदनाम जगहें कम नहीं जहाँ लड़कियों से गुप्त रूप में घृणित व्यापार कराया जाता है। कई जगह गुण्डे लड़कियों को भगा कर उनसे घृणित व्यापार कराते हैं। हमारी समाज में कई ऐसी जातियाँ भी हैं जैसे नर्सें जो काम चलती हैं। समाज में हज़ारों गैर-कानूनी बच्चे पैदा होते हैं व कईयों को तो गर्भ में ही मरवा दिया जाता है। आजकल आधुनिक डाक्टरी मशीनों से एक-दो महीने तक के गर्भ में रहने वाले बच्चें का बिना किसी असफलता, कष्ट या हानि के गर्भपात कराया जा सकता है। ऐसे केसों के सिर पर ही चिकित्सालयों ने अपने बड़े-बड़े भवन खड़े कर लिये हैं। दूसरी ओर क्या ऐसी प्रवृत्ति समाज के लिये हानिकारक व बच्चों को मारना सरासर अपराध नहीं। इन गुण्डों की कार्यवाही के बीच में कुछ सच्चे ईमानदार व उद्यमी मनुष्य भी हैं जो सार्वजनिक हित के लिए व इन भ्रष्ट आचरणों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं। किन्तु इस समय उनकी आवाज़ें इतनी दुर्बल हैं कि उनको दबाना गुण्डों के बायें हाथ का खेल है।

दूसरी ओर खाने की वस्तुओं में भी जहाँ मनुष्य के जीने की दुर्दम इच्छा प्रकट होनी चाहिए, मिलावट है। हल्दी, दालचीनी, नमक, मिर्च, इलायची व अन्य मसालों में मिलावट है। घी में, दूध में मिलावट है।

इतना गन्द जो प्रतिदिन अपने पेट में भरते हैं उससे आप ही अनुमान लगा सकते हैं कि हमारा भविष्य कितना सुरक्षित हो सकता है ? इससे क्या हम यह अनुमान लगायें कि मनुष्य जीना नहीं चाहता या केवल अपने स्वार्थ या थोड़े से लाभ के लिए मानवता का भविष्य खतरे में डाल रहा है ?

देश के इस गिरावट की दशा से ऋषि-मुनि जिस कलयुग की कल्पना किया करते थे क्या वही अवस्था नहीं आ पहुँची और क्या अब हमें किसी भी समय प्रलय का खतरा नहीं सताता ?

: ६ :

सर्वव्यापक भ्रष्टाचार, व्याभिचार व दुराचार से पशु व मनुष्य म कोई अन्तर नहीं रहा। आज मनुष्य की पतनावस्था अपनी पराकाष्ठा पर है। क्या आदि काल से मनुष्य का यही हाल है? नहीं! नहीं! राजन् अपने परिवार के बारे में सोचने लगा ...... यह कैसे हो सकता है। मेरे दादा जी सुबह मुझे मन्दिर में ले जाते थे—मेरे माता-पिता भी वहाँ पहुँचते थे। उन्होंने ईश्वर के होने न होने का कभी प्रश्न नहीं उठाया था। वह तो सदा उसके सर्वशक्तिमान व सर्वव्यापक और न जाने क्या-क्या होने की कहानियाँ बड़े चाव से सुनाया करते थे। उन सब की सादगी, स्वभाविकता व भोले पन में श्रद्धा थी। उनका जीवन के उपयोगिता में विश्वास था। वह ईश्वर को पाने के लिये जीते थे। वह अपना कुछ समय भलाई व नेक काम में लगाते थे। यह चाहे हम बारबार अपने गौरवमय अतीत का स्मरण करते हैं जो मनुष्य को अपने वर्तमान के दु:खों व संकटों से छुटकारा पाने का अच्छा रास्ता है, किन्तु हमें बारबार ऐसा नहीं करना है। हमें वर्तमान को सुन्दर बनाना है जिससे आने वाली पीढ़ियाँ भी हमें अच्छे शब्द कह सकें। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे पूर्वज हमारे से अधिक निष्कपट, विश्वासप्रिय व जीवन की उपयोगिता को समझने वाले थे। यदि हमें इस बात की सत्यता पर विश्वास नहीं आता तो हम मानव के विकास पर दृष्टि डाल सकते हैं। इसके लिए हमें साहित्य को देखना पड़ेगा, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है, व समाज व्यक्तियों से बना है। उसके अतिरिक्त इतिहास का जगह हम साहित्य पर अधिक भरोसा रख सकते हैं। इतिहास की पुस्तकों

में घटनाओं का व्योरा मात्र मिलता है किन्तु साहित्य में किसी भी समय की आशा निराशा, आस्था अभिलाषाएँ व पीड़ा-वेदनाएँ सब का चित्रण मिलता है। मैं वह मानव जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता हूँ। सोलहवीं व सतरहवीं सदी के लेखकों ने मनुष्य को धार्मिक व मानवता के हितों का पालन करने वाला चित्रित किया है। उसकी पवित्रता व नैतिक संघर्ष को हर पुस्तक में प्रधानता दी जाती है। डान्टे, शेक्सपियर, बाल्जक, टाल्स्टाय ने भी मनुष्य के विशेष गुण अच्छा होना धार्मिकता व पवित्रता का खयाल रखना कहे हैं।

किन्तु आज हम मनुष्य को किसी भी जीव की भाँति सब प्रकार के लालच आशा व भय जैसी भावनाओं से उसे धोखा भी दे सकते हैं, भयभीत भी कर सकते हैं। आजकल किसी वस्तु का कोई कारण नहीं पूछता, उसके गुण-दोषों को कोई नहीं विचारता, किन्तु भेड़-चाल की तरह आज के लोगों को धोखा दिया जाता है। विज्ञापन इस प्रवृत्ति का प्रमुख प्रमाण है जिससे हज़ारों मनुष्यों की विचारधारा को धीरे धीरे पलटा जाता है। आज संसार में उत्तेजना व सनसनी हमारे जीवन के पथ को व हमारी विचारधारा को बनाने व बदलने में महत्वपूर्ण हाथ रखते हैं। हमारा जीवन आज अस्थायी विचारों व वस्तुओं पर निर्भर रहता है। यदि यही दशा रही तो भविश्य का अनुमान लगाना कठिन है।

आज का प्राकृतिक जीव इस पेचीदा संसार से एवं महायुद्ध के घोर संकटों से पीड़ित, कुण्ठित, व्याकुल व ऐंठा हुआ सा है। वह इन पेची-दगियों से छुटकारा पाकर एक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहता है। किन्तु इन सब कामों में समाज उसके पथ पर रुकावट है। वह इस जीवन की धुन से ही समाज विरोधी बन चुका है। वह आत्मा के जीवन को नहीं मानता व उसका ईश्वर से विश्वास उठ गया है। यहीं से नास्तिकता को जन्म मिलता है।

"क्या ऐसा ही था हमारा जीवन ? कदाचित नहीं। बचपन में कभी-

कभी मैं अपने चचा के साथ अपने गाँव में जाया करता था—वहाँ अच्छा खाने को, अच्छा पीने को व खुला वातावरण जीने को मिलता था। वहाँ मिलावट न थी, कृत्रिमता न थी। संध्या को लोग हमारी चौपाल में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाते, गप्पें लगाते, व संसार भर के विषयों पर बहस-मुभायसा होता। गाँव के लड़ाई-झगड़ों को बड़े-बूढ़ों को सुलझाने के लिए दे दिया जाता था। किसी विपत्ति को गाँव की विपत्ति समझा जाता था। त्योहारों में सब रँग-रलियाँ मनाते थे। गाँव एक सुव्यवस्थित परिवार की भाँति रहता था। लोग ईश्वर को मानते थे व शेष समय आग की सेक में कहानी-किस्सों में गुज़र जाता। उन कहानी-किस्सों में पीढ़ियों का सत्य व अनुभवों की गहराई भरी रहती थी जो बड़े-बूढ़े अपने छोटों को जीवन-यापन के लिए बता जाते थे। उनको शिक्षा नहीं मिलती व संसार में हल-चल मचाने वाले प्रगति के समाचारों का पता नहीं चलता था। इसीलिए वह इतने शान्त, प्रफुल्लित व चिन्तारहित रहते थे। क्या उनका अज्ञान उनके लिए वरदान नहीं सिद्ध हो रहा ?"

"जब मैं शहर में आता हूँ तो एक अस्त-व्यस्त, व्याकुल, उद्देश्यहीन व विक्षिप्त जन-समुदाय को इधर-से-उधर, उधर-से-इधर अपने-अपने कार्यों के लिए भागते हुए देखता हूँ। उनके ऊपर भय का नशीला वातावरण उनको काबू किए हुए होता है, जिसकी पकड़ में उनकी बुद्धि नष्ट हो रही है। न जाने उनके ये कार्य व आगे बढ़ने का उन्माद, जिसको वे बहुत महत्व देते हैं, उन्हें कौन-से गर्त में ले जाकर फेंकेंगे। क्या हम यह सोचें कि संसार चल रहा है, इसलिए प्रगति हो रही है। इससे प्रश्न उठता है कि क्या प्रगति या उन्नति सम्भव है ? जिन देशों में वैज्ञानिक व उद्योगिक क्रान्तियाँ हो चुकी हैं वहाँ के लोग सुख व आनन्द से रहते हैं। उनके पास काफी खाने-पीने को है। वे दरिद्र व बूढ़ों की रक्षा करते हैं व अधिकाधिक सामाजिक जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करते

हैं। वे हमारे पूर्वजों से कुछ अधिक लम्बे व भारी हैं। क्या प्रगति का यह अर्थ नहीं कि व्यक्तियों को, जो उनके अन्दर है, उसके विस्तार का यथा-सम्भव अवसर दिया जाय ? या प्रगति का अर्थ किसी वांच्छित दिशा में वह आन्दोलन या क्रान्ति नहीं जिसको लोगों ने हृदय से व भारी बहुमत द्वारा, काफी समय के लिए अपनाया हो। उदाहरणतय तकनीकी वैज्ञानिक प्रगति जिसमें प्रचुर मात्रा में मानव को सुख दीखता है व आनन्द लेने के लिए दौलत। हाँ ! यह सब प्रगति है...

किन्तु उन भयानक कैम्पों के भारी संख्या में निर्दयता से मनुष्य संहार क्या मानव की प्रगति का प्रमाण है ? नागासाकी व हिरोशीमा की बम्बारी जिनके पीछे दुर्भाग्य से आज की सदी के कुछ महापुरुषों का हाथ भी कहा जाता है, क्या प्रगति का प्रमाण है ? संसार में लोगों की दो श्रेणियाँ हैं। एक तो वह हैं जो उन्नति करने के पश्चात् धन दौलत से विशेषाधिकारों का आनन्द उठा रहे हैं। व दूसरे वे हैं जो बहुसंख्या में हैं व जिनके पास खाने-पीने की समस्या का भी हल नहीं हो पाया। जिन देशों में तकनीकी उन्नति के सहारे इतना कुछ पैदा हो जाता है कि वे उसे सम्भाल न सकें, तब वे भूखे नंगे देशों को कुछ देने की अपेक्षा उस अधिक उपज को जला देते हैं या समुद्र में गिरा देते हैं ताकि अधिक उपज से भाव गिर न जाएँ व उनका अन्न मन्दा न बिके। मानव के विकास की यह दशा पहुँच चुकी है। उसके अतिरिक्त खाने पीने को समस्या के हल से मनुष्य ने अपने शेष समय को लड़ाई व उसके अस्त्र-शस्त्र बनाने में बरवाद कर दिया। इससे तेज गति से तकनीकी प्रगति का पागलपन स्पष्ट हो जाता है। क्या यही प्रगति सिखाती है ? तकनीक व वैज्ञानिक प्रगति की तेज गति के साथ हम अपने सहकारी एवं परस्पर सहयोग के कार्यों को नहीं मिला सके। उसका मूल्य आज हमें चुकाना पड़ रहा है। मानव ने प्रकृति को केवल मात्र अपने अधिकार में लाने के लिए नहीं जीता था। वह उससे मानव-जाति को अधिक समृद्धिशाली, सुखी

व मनुष्य के पवित्र प्रकृति के अनुकूल बनाना चाहता था। किन्तु हमारी तकनीकि विजय ने इस पहलू को बहुत पीछे छोड़ दिया है। वह अपनी उन्नति को लड़ाई का सामान बनाने व अल्प संख्या के लोगों को विशेषाधिकार देने में अनुचित लाभ उठा रही है। आज परस्पर सहयोग व मैत्री के आदान-प्रदानों में, हम तकनीक कि उन्नति के सामने इतने पीछे रह गये हैं, जिससे एक ऐसी लड़ाई का खतरा आ गया है जो पृथ्वी को मनुष्य के रहने योग्य नहीं छोड़ेगी। उससे ही आज अणु व उद्जन बम जैसे संघातक अस्त्रों द्वारा युद्ध का भय बना रहता है। क्या यह प्रगति का प्रमाण नहीं। हम आज भी समाजिक व नैतिक अवस्था में बहुत गिरे हुए हैं। आज अपने को यथा सम्भव सब प्रकार से उन्नत समझने वाली जातियाँ अपने समान मानवों पर अत्याचार कर रही हैं। बड़े राष्ट्र अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए छोटे राष्ट्रों के निजी मस्लों में हस्तक्षेप करते हैं। अमेरिका में सफेद लोग अपने समान मनुष्य नीगरों को केवल रंग भेद के लिए समान व्यवहार व स्वतन्त्रता नहीं देते। उसके अतिरिक्त उन पर आये दिन अत्याचार किये जाते हैं। इसी तरह छोटे राष्ट्र आज तक स्वार्थ, लिप्सा व शोषण का शिकार बनते रहे हैं। इससे भ्रष्टाचार व अत्याचार सर्वत्र फैल रहे हैं व वासनात्मक प्रवृत्तियाँ अपना ज़ोर मार रही हैं। आज का मनुष्य अच्छा नागरिक नहीं रहा। वह अपने नागरिक गुणों को छोड़ रहा है। वह ईमानदार नहीं, सुहृदय नहीं, दूसरी जातियों की स्वतन्त्रता की परवाह नहीं करता। वह निस्वार्थ भाव से राष्ट्र व मानवता की सहायता नहीं करता। वह अपने सद्गुणों को भूल कर आज धोखे, छल व कपट में बुरी तरह संलग्न है। लोगों का जीवन की उपयोगिता से विश्वास उठ गया है। क्या यह सब उन्नति है ? दूसरी और तकनीक की उन्नति से राजनीति व अर्थशास्त्र में, कला व धर्म में, स्वतन्त्रता के पुजारियों के लिए बाधा आनी स्वाभाविक है। यह सब क्षेत्र राज्य द्वारा नियन्त्रित किये जायेंगे।

इन सब से हमें बहुत हानि होगी। क्योंकि हम लोगों की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी। मानव की सब से मूल्यवान वस्तु स्वतन्त्रता है। उसकी रचनात्मक कलाओं व धार्मिक अनुभवों में रुकावट डालना मानव के उच्च मनोरन्जन व आनन्द में बाधा डालना है। जिनका विकास उसने सभ्य होने के नाते किया था।

: ७ :

राजन ने बालरूम की ओर दृष्टि दौड़ाई। समय अधिक हो जाने से अधेड़ उम्र के लोग जा चुके थे। अब कुछ उन्मत्त युवक, युवतियाँ जिन-का यौवन जोश मार रहा था नृत्य कर रहे थे। जोड़ी में लिपटे युवकों के होंट युवतियों की लटों पर चुम्बन अंकित कर रहे थे। कसे हुए कपड़ों में युवतियों के कड़े उरोज व गुब्बारे की तरह फुले हुए नितम्ब आंखों में कामुकता भर रहे थे। बार बन्द होने में थोड़ा समय रह गया था इस लिए उन्मत युबक युवतियाँ राक एण्ड रोल सेशन के लिए अनुरोध कर रहे थे।

ऐसे हीमें भी कभी अपनी प्रेमिका की बाहों में बाहें डाल भिन्न-भिन्न जगहों पर ऐसी ही रंगीन रातों का उपभोग करता था···पर आज मेरा मन न जाने क्यों यहाँ से, इस वातावरण से, दूर जाने का प्रयत्न कर रहा है। यह नहीं कि मैं इस वातावरण को पसन्द नहीं करता या अभयस्त नहीं हूँ···पर शायद मानवतावादी होने के नाते या अपनी विचारने की आदत से···सम्भव है···

तभी उसने बैरे के मोटे कपड़ों व एक साहब के कल्फ लगे कमीज़ व तपाकेदार सूट को देखा। व सोचने लगा।······क्या मानवता की सब समस्याएँ यहाँ से आरम्भ नहीं होतीं ? विश्व में एक ओर वे अल्प संख्यक लोग हैं जो धन द्वारा उपभोग करते हैं व विशेषाधिकारों का आनन्द उड़ाते हैं व दूसरी ओर अर्धनग्न, शोशित, दरिद्र लोग हैं जिनकी अभी खाने-पीने व रहने की समस्याएँ भी हल नहीं हो पाई। उनके लिए स्वतन्त्रता, समाजिकता का क्या अर्थ है। यह विचार तो थोड़े से धनी-मनी व शिक्षित लोगों के बहस मुभाय से के लिए बने हैं।

इस समय मानवता के आगे दो बड़ी समस्याएँ हैं। सर्वप्रथम आजकल प्रत्येक व्यक्ति जैसे-तैसे भी धनी बनना चाहता है। इसी-प्रवृत्ति से धूर्तता, अपराध, धोखेबाजी व भ्रष्टाचार को जन्म मिलता है। दूसरी समस्या विश्व-शान्ति की है जिसके लिए दु:खी मानवता चीत्कार कर उठी है। तीसरी समस्या मानव की प्रकृति को बदलना व धर्म की ओर मोड़ना है, जिनकी चर्चा मैंने पहले कर दी है। आज अणुबम्ब, उद्जन बम्ब व अन्तरमहाद्वीपीय प्रेक्षपणा-स्त्रों की खोज ने संसार को युद्ध के कगार पर खड़ा कर दिया है। प्रेक्षपणास्त्रों की खोज से आज युद्ध को बिना घोषणा के आरम्भ कर दिया जा सकता है या दूसरे शब्दों में आकस्मिक हम्ले होंगे जिससे पहले आरम्भ करने वाले को बड़ा लाभ रहना स्वाभाविक है। इन आश्चर्य जनक आक्रमणों से बचने व उनका वैसे ही प्रत्युतर देने के लिए दोनों तरफों को हर समय तैयार रहना पड़ता है। इससे युद्ध का खतरा हर समय बना रहता है। प्रेक्षपणास्त्रों की तीव्र गति से चलने के कारण उनको गिरने से कुछ क्षण पहले ही रादर परदे (Rader Screen) पर देखा जा सकता है। उसके अतिरिक्त विपक्षियों को मार गिराने व उनके अड्डों को नष्ट करने का प्रश्न पैदा होता है। इन सब के लिए मनुष्य का मस्तिष्क बहुत आलसी व धीरे काम करने वाला है। इसी लिए यह कार्य आजकल विद्युत से बने यन्त्र-चालित मस्तिष्क के हाथों सौंप दिया गया है जिसका रादर परदे से सम्बन्ध बना रहता है। जब प्रेक्षपणास्त्रों के चिन्ह राडर पर्दे पर आ जाते हैं तो विद्युत मस्तिष्क कुछ ही क्षणों में उनका स्थान व स्थिति बता देता है, जहाँ पर धावे का प्रत्युत्तर देना होता है। इस तरह हम देखते हैं कि आज हम सब का भाग्य एक विद्युत चालित मस्तिष्क के ठीक या गलत चलने पर निर्भर हो गया है। इस मस्तिष्क को मानव-मस्ष्तिक की भांति किसी वस्तु के शुद्ध-अशुद्ध को ढूंढ निकालने की सुविधा प्राप्त नहीं है। इसका ठीक चलना केवल तकनी की वस्तुओं के विस्तार

पूर्वक जाँच पर निर्भर है, क्योंकि किसी भी यन्त्र का ठीक चलना उसके पुर्जों के ठीक रहने पर होता है। यदि उसके पुर्जे किसी समय खराब हो जायें तो हमें निकट भविष्य में कितना बड़ा खतरा आ सकता है इसका अमुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आजकल परमाणु अस्त्रों को दूसरे देशों में मिलिट्री सहायता के रूप में भी दिया जा रहा है। संसार को यह आश्वासन दिया जाता है कि इनको प्रयोग में नहीं लाया जायेगा। इस आश्वासन से क्या बनता है ? यदि कोई पागल शासक किसी समय शक्ति के मद में मानवता का नाश करने पर उतारू हो जाये तो उसका जिम्मेदार कौन होगा ? कई देश इस मिलिट्री सहायता को नहीं लेते, क्योंकि उनको अपने लोगों की राय का, जो इसके विरोध में है, ख्याल करना पड़ता है। यदि विश्व-शान्ति की समस्या दूसरे देशों में परमाणु अस्त्रों के बनने से पहले हल न होगी तो मानवता में सर्वत्र फैले भय की दशा और गम्भीर हो जायेगी। जिस प्रकार डारविन के सिद्धान्तों ने उन्नीसवीं सदी को हिला दिया था उसी प्रकार अणु-उद्जन बम्ब व युद्ध के भय ने बीसवीं सदी के मनुष्य का विश्वास श्रद्धा व परस्पर प्रेम तोड़ गिराया है। उसने आज मनुष्य को अनैतिक भ्रष्ट व अधर्मी बना दिया है। उसी समय राजन ने हाल की ओर देखा। उन्मत्त जोड़े बड़ी तेज़ी के साथ राक-एण्ड-रोल का नृत्य कर रहे थे। राजन ने सोचा क्या यह प्रलय का ताण्डव नृत्य नहीं कर रहे हैं…। जिसमें हमारी समस्त मानवता, सभ्यता व धर्म नंगा नाच कर रहे हैं।

हमें आज सर्वप्रथम शान्ति का मार्ग ढूंढना है। यह मनुष्य के जीने का व अस्तित्व का प्रश्न है। इस ओर हमें अपनी पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य से ध्यान देना है। आजकल शिखा-सम्मेलन बुलाने की रीति सी चल पड़ी है किन्तु शिखा-सम्मेलनों से तब तक कुछ नहीं हो सकता जब तक तनाव की स्थिति को सुहृदयता से न सुलझाया जाये। सम्मेलन के उद्देश्यों व विचारों पर पूर्ण निश्चय हो। सम्मेलन कम-से-कम प्रतिनिधियों का हो व जो प्रतिनिधि आयें उनको विश्व-शान्ति के भारी उत्तरदायित्व का

ध्यान हो। उनकी भावनाएँ व उद्देश्य ईर्ष्या-द्वेष, संकीर्णता व परस्पर अविश्वास से दूर हों। यदि एक-दूसरे के प्रति सन्देह की वृत्ति को लेकर विचार-विनिमय हुआ तो वह शतरंजी चाल से बढ़कर क्या हो सकता है ? यदि हमें परमाणु-परीक्षणों को बन्द करना है व भविष्य में लड़ाई के खतरे को दूर करना है तो हमें ऐसे परस्पर विश्वास व मानव को अपने समान भाई मानव को समझने की भावना को जगाना है, अपने नैतिक व्यवहार को उठाना है व ऐसे वास्तविक प्रस्तावों को निकट आने का प्रोत्साहन देना है जिससे विश्व-शान्ति की समस्या पर शान्तिपूर्ण व निष्पक्ष ढंग से विचार एवं निर्णय हो सके। दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि स्वार्थ व निज हित के कारण ही या परस्पर गुटों के समान शक्तिशाली बने रहने के साथ ही संसार बचा रहे। पर यह बालू की दीवार को स्थायी समझने के समान होगा।

आज के स्पूतनिक-युग से मानव ने देश और काल पर विजय अवश्य प्राप्त कर ली है, किन्तु यह एक वह तथ्य है कि विभिन्नराष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों के क्षेत्र में उसे अब तक जोकुछ प्राप्ति हुई है वह उसकी तुलना में पराजय ही गिनी जायेगी। इस पराजय का ही यह परिणाम है कि एक ओर जहाँ मानव उद्योग और विज्ञान के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति के पथ पर है वहाँ दूसरी ओर असुरक्षा; भय और चिन्ता उसके मन और मस्तिष्क को दिन-पर-दिन अधिक जर्जर करता जा रहा है। यह कैसी विचित्र परस्पर विरोधी स्थिति है। यदि संसार को सुख और शान्ति अभीष्ट है तो इसका अन्त तो करना ही होगा।

सुख और शान्ति की प्राप्ति पारस्परिक भय और शंका के निवारण से ही सम्भव है और यह निवारण तभी हो सकता है जब संसार के राष्ट्र मानसिक दृष्टि से एक-दूसरे के निकट आयें। केवल देशकाल पर विजय से यह मानसिक निकटता प्राप्त नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यक है एक-दूसरे के जीवन की जानकारी और मानवीय स्तर पर उसके प्रति अनुभूति। इस अनुभूति के बाद दो देशों की विचारधारा

में कितना ही अन्तर हो और उन्नति एवं विकास की दृष्टि से वे कितने ही भिन्न स्तर पर खड़े हों, किन्तु उनमें मैत्री सम्बन्ध स्थापित रह सकते हैं। यह मैत्री-सम्बन्ध अथवा मानसिक निकटता ही वस्तुत: सुख-शान्ति के मूल हैं और उस भय के निवारक हैं जिसने राष्ट्रों के बीच भेद की दीवारों को खड़ा किया हुआ है। इसके लिए हमें सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ाना है।

प्राचीन काल में जब यातायात के साधन दुर्लभ थे तब भारत ने इन्हीं सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान द्वारा दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देश से जो मधुर सम्बन्ध स्थापित कर लिये वे सर्वविदित हैं। आज भी यदि सब देशों के बीच इस आदान-प्रदान का द्वार पूर्णत: स्वतन्त्र रहे और वे सांस्कृतिक आधार पर एक-दूसरे के निकट आने की चेष्टा करें तो यह निश्चय है कि विचारधारा और स्वार्थों की विभिन्नता के कारण जो पारस्परिक द्वेष और असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी है उसके निवारण में बहुत अधिक सहायता मिल सकती है।

यूनिस्को ने इस दिशा में कार्य अवश्य किया है। परन्तु उसकी जितनी मात्रा में आवश्यकता है उसकी दृष्टि से वह नितान्त अपर्याप्त है। इसलिए जहाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ को इसके लिए अधिक सचेष्ट होने की आवश्यकता है वहाँ सब राष्ट्रों का भी कर्त्तव्य है कि वे एक-दूसरे के यहाँ सांस्कृतिक शिष्टमंडलों के भेजने की परम्परा को और भी अधिक गतिशील बनायें। ये शिष्टमंडल अपने-अपने देश की सांस्कृतिक और वैचारिक गतिविधियों से अन्य देशवासियों को अवगत करें अपितु उन्हें इस प्रकार से उपस्थित करें कि वे यह अनुभव कर सकें कि मानवीय स्तर पर अनुभूति के जगत में हम सब एक हैं और एक रहने में ही उनका अन्तिम कल्याण निहित है।

आज विभिन्न देशों के बीच मैत्री-यात्रा, सांस्कृतिक दलों के आदान-प्रदान, छात्र एवं विद्वान् विनिमय, भाषणमाला-व्यवस्था के रूप में सांस्कृतिक सम्बन्धों में वृद्धि तो अवश्य हो रही है; परन्तु दुर्भाग्य से वह

भी कभी-कभी राजनीति से प्रभावित हो जाते हैं—विशेषकर ऐसे आदान-प्रदान जो गैर-सरकारी मैत्री सम्बन्धों के आधार पर चलते हैं। गैर-सरकारी मैत्री संघों की परम्परा अच्छी है, परन्तु अनुकूल परिणाम प्राप्त करने के लिए यह बहुत आवश्यक है, कि वे किसी विशष्ट राजनीतिक विचारधारा के अनुगामी न होकर केवल देश के संस्कृति-वाहक दूतों के रूप में कार्य करें। तभी वह सफल हो सकेंगे और इस प्रकार अज्ञान और असहिष्णुता के कारण उसके बीच जो दीवारें खड़ी हो गई हैं वे नष्ट हो सकेंगी।

हमें शान्ति की स्थापना के लिए अपनी आत्मा व मस्तिष्क की शक्तियों का विकास करना है, जिस प्रकार एक साधु या भक्त सुदूर जंगलों व कन्दराओं में जाकर तप या योग करते हैं व उनको जो ज्ञान व प्रकाश प्राप्त होता है वह मानवता के कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। उनकी वस्तुओं के बदलने में विश्वास व श्रद्धा अनुकरणीय है। वह हमारी आत्माओं को परिष्कृत करें व उस परम सत्ता से मिलाने के लिए सहायक होते हैं। एक और उदाहरण लीजिए। "राजन को सोचते-सोचते ऐसा लगा जैसे वह कहीं पर भाषण दे रहा हो, "जैसे एक मनुष्य सदा प्रफुल्लित रहता है। वह अपने निकटवर्ती वातावरण को भी सदा आनन्दित बनाये रखता है। जब वह किसी को मिलता है तो उसके अन्तर से उल्लास व प्रसन्नता की किरणें उसके मिलने वाले के पास भी पहुँचती हैं जिससे प्रभावित हो वह भी प्रफुल्लित हो जाता है। दूसरे मनुष्य पर पड़ने वाला प्रभाव, जिसको हम सम्मोहन व वशीकरण शक्ति या जो कुछ भी कहते हैं, वह बहुत प्रभावशाली वस्तु है जिसका यथासम्भव विकास करना चाहिए। आज हमें मनुष्य चाहिएँ जो सुहृदय, प्रसन्नचित्त, संवेदनशील हों व जिनमें मानवता के हितों व सामाजिक भावनाओं का पूर्ण विकास हुआ हो। वे जहाँ भी जायेंगे स्वाभाविक है उनके हृदय से निकलने वाली सत्य की सुगन्धि संसार को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करेगी। इस भावना के विकास में मनुष्यों को बदलने की अद्भुत

शक्ति विद्यमान रहती है। क्योंकि हर दिशा में आज गुण्डों का राज्य है। इसी गुण्डागर्दी ने आज हमें बर्बरता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। वर्बरता के उदाहरण से इस शक्ति के पराक्रम का पता लगता है। यदि हम इसी भावना या अन्तर की शक्ति का विकास कर सत्कर्मों की ओर लगाएँ तो हम मानवता को नये मोड़ की ओर ले जा सकते हैं जिसमें मानव की स्मृद्धि, उल्लास व शान्ति निहित है ......

राजन सोचते-सोचते थक गया था व उसका मस्तिष्क भी काफी थक चुका था, किन्तु सब-कुछ स्पष्ट होने की अपेक्षा भी उसका दिल कुछ बेचैन और घबराया सा हुआ था। उसने बची हुई हाला को एक घूंट में समाप्त किया व सिगरेट को ऐस-ट्रे में फेंका, बिल का भुगतान किया व बाहर निकलने को द्वार की ओर बढ़ा। वह बाहर निकला तो जोरों का अन्धड़ बड़े वेग से बह रहा था। राजन ने शराब काफ़ी पी हुई थी। इसलिए उसके पैर कुछ देर डग-मग हुए पर उसने अपने को सम्भाला। अन्धड़ के साथ घनघोर वर्षा भी हो रही थी। राजन चलने लगा, किन्तु वायु के एक तीव्र झोंके ने उसे दूसरी ओर धकेल दिया। वायु वादियों में घूँघूँ की दहलाने वाली आवाज़ पैदा करती हुई पेड़ों से टकरा कर शाखों व पतों से टकरा कर सर-सर मर-मर कर उस तूफानी रात की भयानकता की ओर बढ़ रही थी। उसमें बिजली की निरन्तर कड़कड़ाहट ऐसी लग रही थी मानो महाकाल का धाड़-धाड़ गर्जन हो रहा हो। बिजली की चमकाहट से खूनी आँधी का रक्त-वर्ण स्पष्ट हो रहा था। वह खूनी आँधी सर्वनाश का चिन्ह होती है व जिसका नाम सुन कर लोग काँप उठते हैं। बिजली की चमक में खूनी आँधी की भयंकरता और बढ़ रही थी। राजन चलते-चलते रुक गया व आकाश की ओर देखने लगा। (वहाँ का सारा मार्ग टीनों के छत से ढका हुआ था) वह सोचने लगा, "इसका क्या अर्थ है कि देवतागण हमारे से रुष्ट हैं या वह हमारी बर्बरता व नीचता को और अधिक समय तक सहन नहीं कर सकते ? पर यह बिजली का चमकना, खूनी

आँधी का वेग, घनघोर वर्षा का जल यह सब क्या कहना चाहते हैं ? बड़ी-बड़ी वेगवती नदियों पर बाँध लगाने से जल को रोक कर व समुद्र पर पुल बांध कर, समुद्र व आकाश में जहाज़ व वायुयान चलाकर, देश एवं काल पर विजय पाकर मानव जो यह सोचता है कि उसने प्रकृति पर विजय पा ली, यह सब उसका भ्रम है। यदि प्रकृति दयालु है तो उतनी भयंकर एवं कठोर भी। यदि हम प्राकृतिक नियमों का पालन करें तो वह हमें वरदान देती है, जैसे प्राकृतिक नियमानुसार सारा दिन हम हुड़दंग मचाने के बाद जब रात को निद्रा-देवी की गोद में लेट जाते हैं तो प्रकृति हमें अनुशासित व नई शक्ति प्रदान करती है। पर यदि हम इससे होड़ लें तो यह अपने रौद्र रूप की चरम सीमा तक उतर आती है। खूनी आँधी से पेड़ गिर जाते हैं, कुछ नज़र न आने से सब काम रुक जाते हैं, यहाँ तक कि कुछ मकानों की नींव तक हिल जाती है। घनघोर वर्षा से बाढ़ आ जाते हैं जिससे गाँव व शहर के शहर जल-मगन हो जाते हैं, मनुष्य डूब जाते हैं, प्रतिदिन का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। समुद्र में ज्वार भाटे से जहाज़ डूब जाते हैं। भूकम्प से सुन्दर भवनों से भरे शहर कुछ पलों में पत्थरों के कुछ ढेर हो जाते हैं। हज़ारों मनुष्य पत्थरों के नीचे दब कर मर जाते हैं। तब मानव को अपनी तुच्छता का, अपने संकुचित घेरे के भीतर बन्द रहने का ज्ञान मिलता है। जिन वस्तुओं को वह सहस्त्रों वर्ष के श्रम से बना पाता है प्रकृति उनको कुछ क्षणों में मिट्टी में मिला देती है, उसी मिट्टी में जिससे उनका सृष्टि के आरम्भ से उद्‌गम होता आ रहा है। उस समय सब मानव निराश्रय, निस्साह आवस्था में फेंक दिये जाते हैं। जब सब मनुष्य अपने साथियों को भी उसी निराशाजनक अवस्था में पाते हैं तब वे सहायता के लिए अपने साथियों की ओर न ताक कर, ऊपर आँखें उठाते हैं और ईश्वर को याद करते हैं। तब मानव को प्रकृति की व्यापकता व परम सत्ता की शक्ति का ज्ञान होता है। उतने में एक ज़ोर की बौछार आई जिससे राजन के मुंह पर पानी के छीटे पड़ गये। उसने

जीभ से उस पानी को अन्दर किया जैसे कोई तृषित अमृत पी रहा हो। इससे उसके सूख रहे हलक को ठंडाक मिली। उधर से ठण्डी वायु का एक तेज़ झोंका आया, जिससे राजन ठिठुर गया व अपने कमरे की ओर बढ़ा। उसने इधर-उधर देखा, सब लोग अपने दरवाज़े व खिड़कियाँ बन्द कर अन्दर सहमे पड़े थे। किसी को साहस नहीं था कि प्रकृति से होड़ ले।

राजन ने अपने कमरे का दरवाज़ा खोला, कपड़े बदले व बिस्तर में लेट कर गिलाफ से अपने को अच्छी तरह ढक लिया। बाहर सर्दी बड़े ज़ोरों से पड़ रही थी।

राजन को लेटे अभी कुछ ही समय हुआ था कि उसे समीप से ही भीनी-भीनी सुगन्ध आने लगी। उसके साथ नर्म-नर्म पर गर्म-गर्म सर-सराहट भी आरम्भ हो गई। पहले तो उसने सोचा कि यह सब केवल उसका भ्रम मात्र है, किन्तु वह सुगन्ध उसके ओर समीप आती गई व उसके नासापुटों को उन्मत्त बनाने लगी। कुछ ही देर पश्चात् दो कोमल हाथों से कोई उसे सहलाने लगा व एक कोमल पर गर्म शरीर उसके शरीर का बराबर स्पर्श करने लगा।

राजन आज बेचैन था। उसे शशि के प्रति घृणा होने लगी! उसने सोचा कि नारी क्या इतनी निर्लज्ज भी हो सकती है? नारी की लज्जा व अन्य स्त्री सुलभ गुण कहाँ गये? क्या वह सब पाखण्डमात्र थे? किन्तु फिर उसे याद आया कि यह बात नहीं···आज ऐसा युग आ रहा है जब स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में नारियाँ ही आधार बाधेंगी व प्रोत्साहन देंगी। तब तक उसकी पत्नी उसके निकट आ चुकी थी। अपनी पत्नी की पुष्ट माँसलता, कडे उरोजों व उभरे नितम्बोंको वहबहुत ही पसंद करता था। उसके बालों व शरीर में लगी सुगन्धी उसे पागल बना रही थी। राजन ने उसे अपने बाहुपाश में बाँध लिया।

: ८ :

राजन जब सोया तो उसका शरीर थका हुआ व बेचैन था । वह मानवता वादी था । विश्व की अधोगति देखकर उसके मन में जो विचार उठ रहे थे उनका ठीक प्रकार से निर्णय न मिला था । वे सब भाव व विचार उसके सोने के बाद अन्दर-ही-अन्दर उसे और अधिक बेचैन व क्षुब्द कर रहे थे । उनके साथ कल्पना की पुट भी बँध रही थी । उसने स्वप्न देखा······

मनुष्य धीरे-धीरे अपने सद्गुणों को भूलता रहा ··· एक दूसरे पर अविश्वास व सन्देह-वृत्ति से परमाणु-अस्त्रों के परीक्षण होते रहे । उनसे वातावरण दूषित होता रहा । भद्दी आकृतियों के मनुष्य पैदा होने की सम्भावना होने लगी । नारियों का सौंदर्य नष्ट होने लगा । कवियों व लेखकों में सौन्दर्य के प्रतीक की समस्या आ खड़ी हुई । वातावरण दूषित होने से पहाड़ी प्रदेश गर्म स्थल बनने लगे व रेगिस्तान में परिणित होने लगे । मौसम बदलने लगे । गर्मियों के महीनों में लोग कम्बल लेकर सोने लगे । दिन-प्रतिदिन तूफ़ान व आँधियाँ अधिक मात्रा में आने लगीं । वायु के दूषित होने से रहस्यमय बिमारियों का प्रकोप उत्पन्न होने लगा, जिनका यथासम्भव प्रयत्न करने पर भी कोई इलाज न निकल सका ।

"मनुष्य का स्वभाव दिन-प्रतिदिन पतन की ओर जाने लगा । अच्छे ईमानदार मनुष्यों की आवाज़ें सदा के लिए दबा दी गईं । युद्ध के खतरे से मनुष्यों ने सत्यं शिवं सुन्दरं को छोड़कर अपनी सारी शक्ति और अधिक शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों के बनाने का शेष समय खाने-पीने व ऐश करने में लगा दिया । प्रत्येक मनुष्य जैसे-तैसे धनी बनने की धुन में

फिरने लगा। उससे सर्वत्र अपराध, धोखेबाजी, धूर्त का बोलबाला होने लगा। संसार में चोर, लुटेरे, डाकू, धोखेबाज, नफाखोर व गुण्डे अधिकाधिक बढ़ने लगे। मानव ने अपनी मनुष्यता, समाजिकता, स्वतन्त्रता, नैतिकता को सदा के लिए लात मार दी। उसकी जगह भ्रष्टाचार, दुराचार व व्यभिचार ने ले ली।"

"गुण्डागर्दी अपने पूरे आतंक पर उतर आई। सब दिशाओं में गुण्डे अपनी बर्बरता, क्रूरता व पाशिवकता दिखाने लगे। धर्म के आदर्श ऊँचे रहे व भक्त एवं साधु लोग चरस पी-पी कर एक भोग-विलासियों की सेना इकट्ठी करने लगे। राजनीति में नेता की पूजा व प्रतिनिधि सभाओं में बटेरों की लड़ाईयों ने संसार की अधोगति कर डाली। कला में संकुचित घेरे में रहकर पैसे के लालची लेखकों ने वादों और दलों को सदा के लिए कला को कुछ सिक्कों के लिए बेच दिया। प्रगतिवाद व विकासवाद के सिद्धान्तों ने मनुष्य को पूर्ण रूप से स्वार्थी, लालची व पदार्थवादी बना दिया। अधिक धनी बनने की लालसा ने मनुष्य को सदा के लिए मशीनों का गुलाम बना दिया। दूसरी ओर संसार में दिन-प्रतिदिन बढ़ रही जनसंख्या ने कई देशों में मनुष्य के जीवन का खतरा पैदा कर दिया। वहाँ की बढ़ रही दरिद्रता लोगों को एक जून खाने के लिए भी बेहद तंग करने लगी। इससे मनुष्य लूट-पाट दंगा-फसाद में अपने को रमता रहा। सृष्टि ने उल्टे क्रम पर चलना आरम्भ कर दिया।"

"भ्रष्टाचार का चारों ओर बोलबाला होने लगा। हर वस्तु में मिलावट हर चाज़ में खोट मिलने लगी। खाने वाली वस्तुओं में भी मिलावट से मनुष्य का शरीर दिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगा। उसके भविष्य में जीने का खतरा पड़ गया। डाकुओं के पुलिस से मिल जाने से सार्वजनिक जीवन में सुरक्षा न रही। बड़े राष्ट्र अपने स्वार्थ-हितों व धन के लालच में छोटे राष्ट्रों पर अत्याचार करने लगे। गुण्डे लड़कियों द्वारा व विधवा आश्रमों द्वारा अनैतिक कर्म कराने में रत रहे। गुण्डे बालकों पर

मम्याई अर्क आदि निकालने के व उनका गोश्त खाने के जघन्य अपराध व क्रूर अत्याचार करते रहे। वासनात्मक जीवन अपनी पराकाष्ठा पर आ गया। पेरिस उसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण रहा, जहाँ पर कोई भी सचरित्र नहीं समझा जाता। आज के विज्ञापन चलचित्र, शिक्षा-पद्धति, पत्रिकाएँ चित्र सब कामुकता की ओर हमें ले जाने लगे। संसार में चारों ओर वासना से उन्मत्त मनुष्य स्त्रियों से झपटते, लिपटते, टूटते पड़ते और पागल बनते फिरते रहे। जहाँ वेश्यावृत्ति बन्द हो गई थी वहाँ पर गुप्त रूप से अड्डे चलते रहे। शराब व अन्य वस्तुओं का अवैध व्यापार और अधिक संघातक रूप धारण करने लगा। नारियों व गुंडों के अत्याचार विकराल रूप धारण करने लगे। समानता व स्वतन्त्रता के नारे लगाने वाले राष्ट्र स्वार्थ हितों के लिए दूसरे देशों के निजी मामलों म हस्ताक्षेप करते रहे। उसके अतिरिक्त रंग भेद की भावना से जो संसार में मनुष्य दूसरे मनुष्यों के साथ पशुतुल्य आचरण कर रहे हैं वह सभ्यता व मानवता की तुला पर कहीं नहीं ठहरता। हम चारों ओर निराश्रय, निस्सहाय हो गये। मानव अपने पतन की चरमावस्था में आ पहुँचा। विद्वान् व तकनी की प्रगति मानव के सहयोग व चरित्र का उत्थान करने में असमर्थ रही।

दूसरी ओर संसार में चारों ओर युद्ध का खतरा बढ़ता रहा। इस खतरे के विषैले वातावरण से सबकी बुद्धि नष्ट होती रही। लोग सद्-गुणों को सदा के लिए भूल गये। अणु व उद्जन बम के निरन्तर परीक्षण व नग्न प्रदर्शन से विषैला बातावरण बढ़ता रहा। इस बार युद्ध में हार-जीत का कोई प्रश्न नहीं उठेगा। यदि युद्ध आरम्भ हो गया तो मानव-जाति का उन्मूलन हो जायेगा। अन्तरमहाद्वीपीय प्रेक्षपणास्त्रों ने आकस्मिक हमलों का भय पैदा कर दिया। मानवता इन अस्त्र-शस्त्रों के नग्न प्रदर्शन से चीत्कार कर उठी, उसका हाहाकार शिखिर सम्मेलनों में शान्ति प्रदर्शनों व सार्वजनिक सभाओं में बार-बार मार खाने लगा।

बन्दूकें दगने लगीं। इतिहास की भयानक घड़ी आ पहुँची। दुनियाँ युद्ध व भीषण विपत्ति के कगार पर आ खड़ी हुई। हिंस्र पुरुष बार-बार अपने अस्त्रों को खून से सींचने लगे। एक-दूसरे के अस्त्रों को चमका-चमका कर भयंकरता मानवता को दहलाने लगी।

"शान्ति-स्थापना के प्रयत्नों से कुछ न बन सका। भले, सच्चे व ईमानदार लोगों की आवाजें सदा के लिए दबा दी गईं। सब मनुष्यों के आगे राष्ट्रीयता, स्वार्थहित, सन्देह-वृत्ति, विश्व-विजय के सपने, साकार करने के लिए उनका खून खौलने लगा। मनुष्य की बर्बरता, नृशंसता, पाशविकता, क्रूरता व अश्लीलता नंगा नाच करने लगी। संसार की पौराणिक कथाएँ व पवित्र पुस्तकें जिनमें मानव-जीवन की गहराइयाँ भरी पड़ी हैं व जिनसे मानव ने अपनी कठिनाइयों के समय में सदा सहायता ली है व जो सदा सुखद भविष्य बनाने की कल्पना उन्होंने की है आज उनसे मानव-सद्प्रेरणा तो क्या उनके बारे में सोचते हुए भी घबराने लगा, क्योंकि उसका अपने ऊपर से विश्वास उठ गया। ऐसी परिस्थितियों में जग पर महाप्रलय की भयंकर घड़ी मंडराने लगी।"

"...बालकों के सिर से मम्याई निकालना...गुंडों का नारियों पर अत्याचार व बालकों को मारकर खाना...भक्तों का भोगविलाम...विधवा आश्रमों व मन्दिरों को दालमंडी बनाना......सब नगरों का पेरिस की लाईन में लगना...मनुष्य का नये-नये अस्त्रों को उत्पन्न करना...मानव का खून पीनें को चाहना, स्वार्थी, नीच व घिनौने कर्मों का करना... सर्वत्र भ्रष्टाचार, व्यभिचार व अत्याचार, मानव जाति की अधोगति व उसके विनाश की घड़ी को निकट लाने लगे। संसार में फिर एक बार युद्ध के नारे लगे। मानव की हिंस्र प्रवृत्तियाँ उसे सदा के लिए ले डूबीं। एक छोटे से झगड़े ने भयानक युद्ध का विकराल रूप धारण किया। अन्तरमहाद्वीपीय प्रेक्षपणास्त्रों से छूटे धाड़-धाड़ बम्बों की आवाजों ने बड़े-बड़े नगरों को कुछ ही क्षणों में पत्थरों का ढेर कर दिया। नगरों में बम पड़ने से बड़ी-बड़ी मशीनें, कोयले के आगार, धधकते अग्निकांड जो

स्टील का निर्माण करते हैं व अन्य वस्तुओं की फैक्टरियाँ जिन पर मनुष्य भविष्य के सपने संजोये फिरता था महलों के समान भवन जिनकी निर्माणकला पर उनको गर्व होता था वह क्षण भर में सब राख हो गये। निर्दोष भोले बच्चों, स्त्रियों व पुरुषों को विज्ञान के अभिशापों का शिकार बनना पड़ा। बमों के गिरने से सारे वातावरण में चारों ओर मीलों तक भयंकर धूल व आग फैलने लगी। उसके बीच भयत्रस्त मानव का चीत्कार व ध्वंस का व्यापक चित्र नज़र आने लगा।"

"पशु (मानव) ने प्रकृति से पंगा लेने के लिए सहारा मरुस्थल, हिमालय पर्वत, विशाल समुद्र व जहाँ कहीं भी प्रकृति की सत्ता स्पष्ट नजर आती थी उन सब पर भी अपनी शक्ति के मद में, उसने अणु व उद्जन बम्बों को फेंका। अणुशक्ति के स्रोत व केन्द्र, जिनको मानव ने कभी भविष्य के लिए वरदान समझा था, उन सब को ही वह नष्ट करने लगा।"

"प्रकृति को छेड़ने व हिलाने से उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। उसके मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए उसने मानव को उचित पाठ पढ़ाने का निश्चय किया। हिमालय पर्वत, सहारा मरुस्थल, समुद्र व पृथ्वी पर बम्ब फेंकने से प्रकृति को बड़ा रोष आया। उसने मानव को सबक सिखाने के उद्देश्य से महाप्रलय की आज्ञा दे दी। शंकर जो ब्रह्म को अव्यक्त रूप से व्यक्त करते हैं, संसार को भस्म करने के निश्चय से उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया। उनके शिष्य तांडव-नृत्य करने लगे। तीव्र तालों के आघात से, भीषण रूप धारण किये हुए, शंकर के शिष्य जगत् को डांवाडोल करने लगे। सब वस्तुओं का उलटा क्रम आरम्भ हो गया। सब वस्तुएँ चाहे वे जड़—या चेतन पदार्थ हों अपनी पूर्वस्थित स्थिति से अस्त-व्यस्त होकर खंडहरों का रूप धारण करने लगीं। उद्जन बम्बों के गिरने व प्रलय के आगमन से सर्वत्र पानी-पानी दीखने लगा। जंगलों में शेर व चीते गर्जने लगे, हाथी चिंघाड़ने लगे व

अन्य जानवर भयभीत हो अपनी दुम दबा कर इधर-उधर भागने लगे। सर्वत्र जल ही जल दिखाई देने लगा। बम्ब के गिरने से जिन मनुष्यों को बचने की आशा थी वे महाप्रलय के दृश्य से हवा होने लगी। अपनी मौत सामने देख लोग भय से किरलाने लगे। सृष्टि अपने सर्वनाश की गति का व्यापक चित्र दिखाने लगी। सृष्टि के बीज, वनस्पति, जड़ व चेतन पदार्थ प्रलय की भयंकर आरी के नीचे लकड़ी के समान कटने लगे। उन सब में महाकाल का गर्जन व चीत्कारें भी स्पष्ट सुनाई देने लगीं। नाश के इस व्यापक दृश्य में सौन्दर्य की अनुभूति का देवतागण आनन्द लेने लगे। महाप्रलय इनके लिए कोई नई वस्तु न थी। मनुष्य को उसकी सीमित परिधि का बार-बार ज्ञान कराना वह अपना कर्त्तव्य समझते थे।

राजन घबरा उठा। उसके मनमें अनेकों विचार उसे तंग करने लगे···।

'क्या अब वसन्त की मादक समीर एक नये जीवन की आशा नहीं भरेगी? क्या अब टहनी पर बैठकर कोयल अपना मधुर राग नहीं सुनायेगी? क्या अब सावन में झूले नहीं डाले जायेंगे, आम नहीं पकेंगे, बहारें नहीं आएंगी, सूर्य की किरणें सर्दी में स्निग्ध स्पर्श नहीं करेंगी? क्या शुभ्र-विमल चाँदनी के नीचे प्रेमी गण प्रेम बिहार नहीं करेंगे? क्या अब लोग युवतियों को जीतने व सुप्रसिद्ध बनने की इच्छा को त्याग देंगे? क्या अब युवतियों की सुन्दरता पर युवक आहें नहीं भरेंगे? क्या अब लोग स्वतन्त्रता, परस्पर सहयोग, समानता का व्यवहार व ईश्वर में आस्था जैसे उच्च विचारों का आदर नहीं करेंगे? क्या अब सच्चे ईमानदार व सच्चित्र लोग सत्यं शिवं व सुन्दरं की अवहेलना करेंगे? क्या अब भले लोग शान्ति, स्मृद्धि व उल्लास नहीं चाहेंगे?

"वह कैसी जगह होगी? उस स्थान की कल्पना मात्र से मुझे भय लग रहा है। मेरा दम घुट रहा है। वहाँ के लोग कितने निर्दयी होंगे।

उनके भाव व विचार कितने क्रूर होंगें। मैं वहाँ नहीं जाना चाहता। काल ! मुझे वहाँ मत ले जाओ। मुझ बचाओ। मुझे बचाओ······ बचाओ······बचाओ······। राजन ज़ोर-ज़ोर से सपने में चिल्लाने लगा···।

: ६ :

राजन के चिल्लाने से शशि घबरा कर उठी। भय से उसका कलेजा भी बैठ गया। साहस कर उसने राजन के कन्धे को पकड़ उसको ज़ोर-ज़ोर से हिलाया।

"क्या हो गया है प्रिय ! —उठो राजन ... क्या तबीयत खराब है" शशि ने कहा।

"हैं, हैं ... हूँ ... हूँ, मैं कहाँ हूँ ? ओ ... हा ... तुम ... शशि तुम क्या कर रही हो ?" एक दम होश आने पर राजन ने कहा।

"तुम बचाओ बचाओ की जोरों से आवाज़ लगा रहे थे तो मैंने घबरा कर तुम्हें उठाया ..."

"ओह ... अच्छा", कुछ याद करते हुए राजन मुस्काया। आज बड़ा भयानक सपना देखा ... चलो अच्छा हुआ ... पर

"क्या बात है ... क्या सपना था ... तुम तो अभी भी बेचैन से प्रतीत होते हो।"

"नहीं। नहीं। अब तो मैं अच्छा हूँ। ठीक हुआ जो सपना आया। अन्दर की सारी मलिनता निकल गई।" राजन ने मुस्कराकर कहा।

"अब तो आपकी तबीयत ठीक है न, मैं तो चीखें सुन कर डर गई थी।"

"हाँ बिल्कुल ठीक हूँ" राजन उठा व शशि में विश्वास पैदा करने के लिए कि वह ठीक है, उसको प्रेम भरे बाहु-पाश में जकड़ लिया। "तुम कितनी अच्छी हो, जो मेरा इतना ख्याल रखती हो।"

"दूर हठो, तुमने मेरा कलेजा ही बैठा दिया था।"

दुत् पगली । तू वैसे ही घबरा रही है । चल सो जा । राजन ने शरारत करते हुए शशि को पकड़ कर बिस्तर पर लिटा दिया । राजन ने अपना गर्म चोगा पहना व बुदबदाया, "चलो अच्छा हुआ वह सपना ही था और अच्छा हो यदि वह सदा सपना मात्र ही रहे । यह सब मेरी मानसिक बेचैनी के कारण हुआ । पर प्रलय का आना सम्भव नहीं । मुझे तो मानव के सुखद भविष्य में पूर्ण विश्वास है । यह सब कैसे हो गया···हाँ, आज मानव के भावों में महाप्रलय की आवश्यता है । आज उसे अपने धर्म, कला, एवं संस्कृति इन सब में क्रान्ति लानी है ।···हाँ मानव यह सब करेगा ।" इतना कहकर वह बरामदे में कुर्सी पर बैठ गया । वह शुभ्र, विमल, स्वच्छ चाँदनी को देखने लगा । "कैसा स्वच्छ निर्मल, सुहावना मौसम है । अभी-अभी भयंकर वर्षा व तूफान प्रलय व मृत्यु के द्योतक बन रहे थे । और अब स्निग्ध व शीतल प्रकाश की अन्नत ज्योति जीवन में अगाढ़ विश्वास व प्रेम भर रही है । मेरी पक्की धारणा है कि जब तक मनुष्य का हृदय है तब तक विज्ञान व अन्धी प्रगति उसको बदलने में सदा असफल रहेगी । हृदय से ही विचार, भाव व संकल्प का उदय होता है । दर्शन, धर्म और कला हर जाति की संस्कृति के प्रधान अंग हैं । इनका सम्बन्ध विचार, भाव, संकल्प की तरह उन शाश्वत मानवीय मूल्यों के साथ हैं जिनका विकास मानव ने सभ्य होने के प्रयत्न में किया था । दर्शन व विचार का सत्य से धर्म व संकल्प का शिवं से, कला व भाव का सुन्दर से सम्बन्ध है । सत्य से ईश्वर में आस्था, शिवं से विश्व का कल्याण व सुन्दरं से कला का विकास होता है । प्रेम मनुष्य मात्र का बीज़ है, व सौन्दर्य में शक्ति है । इनकी अनुभूति से महान् सुख व कठिनाइयों को झेलने की प्रेरणा, जीवन की मस्ती, ओज सब मिश्रित हैं जिनको शक्ति से आज हमारी सभ्यता को बहुत कुछ सीखना है। उसने देखा आकाश में सहस्रों तारे टिमटिम कर रहे, ज्योति प्रदान कर रहे हैं । ऐसे ही हमें भी सहस्रों-मनुष्यों को टिम-टिम करते देखना है, जो अपनी शक्ति से जीवन के सब क्षेत्रों में सरलता को जन्म दें क्योंकि

पूर्ण परिपक्व जीवन अपने विकास की अन्तिम सीमा में सरलता की स्थिति में पहुँच जाता है।"

राजन ने सामने बन बगीचे की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। जुही, गुलाब व चमेली की मादक सुगन्धि उसे ताजा बना रही थी। जिन फूलों की पंखड़ियों को परम सत्ता ने अपने हाथों से बिना कष्ट दिये रात्री को बन्द कर दिया था वह अब विश्राम के बाद खुल रहीं थी। विश्व को सुगन्धित करने के लिए क्या निस्वार्थ सेवा-भाव था उनमें ?

"फूलों से राजन के विचार विश्व के क्रीड़ा-गृह में चले गये जहाँ मनुष्य अनेक खेल खेलता है। हरे घास की कोंपलों में असंख्य नव-पल्लवों व फूलों में आम की डाली पर कोयल के कूकने में, वायु में वर्षा की भीनी-भीनी गन्ध के रमनें में, सावन के मेघों व झूलों में, युवक-युवतियों के आहें भरने में, बसन्त की मादक समीर में, प्रकृति के नये रूप में; जीवन का नृत्य व सत्य, जीवन की सर्व-व्यापकता, जीवन की श्रद्धा व आशा जो सहस्त्रों वर्षों से मनुष्य के जीवन में निष्ठा व विश्वास भरते आये हैं आज भी उसी विश्वास व प्रेरणा के साक्षी बन रहे हैं। इस सृष्टि के आतुल्य व अनुपमेय सौंदर्य का मधुर-मधु सब प्राणियों को चखाना चाहिए। तभी उन्हें अपनी जीवन-यात्रा पर चलते रहने के लिए निरन्तर ज्योति का सहारा मिलता रहेगा। उसके कानों में नदी व निर्झर के टेढ़े-मेढ़े बल खाते बहने की गूंज आने लगी। जैसे वह ज़ोर-ज़ोर से घोषणा कर रहा हो कि मैं ही तो हूँ जिसमें जीवन का सत्य भरा पड़ा है। तभी मेरे पास ऋषि मुनि, दार्शनिक एवं कवि जीवन की गहनता का अनुमान लगाने आते हैं।

"इतने में आसपास लगे वृक्षों पर जिनकी डालियाँ मस्ती से झूम रही थी, उनपर बैठी चिड़ियाँ व अन्य पक्षियों की चहचहाट नें उसे उधर आकर्षित किया। दूर बने मुर्गीखाने में से भी मुर्गों की निरन्तर बाँग पहाड़ी को काट कर उसके कानों में पहुँच रही थी।" ये सब क्या कहना चाहते हैं, कि उठो ! निद्रा का आलस्य त्यागो। जीवन संघर्षमय है। हम

कितनी सर्दी में अपना काम पूरा कर रहे हैं। तुम भी आज जो एक नया दिन आया है उसको मानवता के कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध करो। मुझे भी उठकर संघर्ष करना है क्योंकि यही जीवन का सत्य है व प्रकृति की शिक्षा है। क्या ये पशु-पक्षी सब दार्शनिक हैं? "इस बात पर वह मुस्कराया पर उसी समय उसे याद आया कि यह बात नहीं ... हाँ समझा! उस परम सत्ता ने मानव के हितों के लिए प्रकृति व उसके बीजों का सामंजस्य बड़े कौशल और चतुराई से किया है। वह महाप्रलय वास्तव में भावों की महाप्रलय थी जो हमें आज जग के सब प्राणियों तक पहुँचाती है। उससे सृष्टि में भावों का नया क्रम आरम्भ होगा जिससे नये युग को जन्म मिलेगा। उस युग में मानव धर्म, कला व दर्शन की संकुचित कड़ियों को तोड़ कर, स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता से सभ्यता के विकास का सच्चा कर्णाधार बनेगा।

उतने में सुदूर से किसी मन्दिर से टन-टन की आवाज़ कानों में पड़ने लगी जैसे कोई कह रहा हो कि इस छोटी सी पवित्र जगह में महान् शक्ति है। जिससे कोई चुनौती न ले।" वहाँ के जग रहे दीपक से सदा मानवता को प्रकाश मिलता रहे। इसीलिए हमें आज सहस्रों दीपकों को जलाना है जो अपने को जला कर विश्व को निरन्तर ज्योति देते हैं।

उतने में फिर टन-टन की आवज़ सुनाई दी। जैसे कोई भक्त अपनी पूर्ण श्रद्धा व विश्वास से यह कह रहा हो कि मानव हममें ज्योति दो कि हम सत्य, शिव, सुन्दर की खोज में रत, जीवन के प्रति अडिग विश्वास रखते हुए शान्ति समृद्धि व उल्लास का मार्ग ढूंढ सकें......।"

तभी राजन के सामने शशि आकर खड़ी हो गई और मुस्कराती हुई बोली, "जीवन की सार्थकता केवल विचार में नहीं है पतिदेव! विचारों की दुनियाँ को छोड़कर कर्म-क्षेत्र में उतरिये।"

शशि की बात सुनकर राजन का स्वप्न सा टूट गया और उसने स्नेह से शशि का हाथ पकड़कर उसे अपने पास ही कुर्सी के डंडे पर बिठला

कर उसके चन्द्रमुख को निहारा और फिर हल्के स्वर में धीरे-धीरे बोला, "तुमने ठीक कहा शशि ! केवल विचार कर्म के बिना व्यर्थ है। केवल विचार-विचार की दुनियाँ में मुझे लगता है कि जैसे मैं पागल हो गया हूँ। अब मैं निश्चित रूप से कर्म-क्षेत्र पर पग बढ़ाऊँगा और मैं तुम दोनों साथ-साथ चलेंगे उस पथ पर जिससे जब कभी भी मैं अपने मार्ग से हटने लगूं तो तुम्हारा स्नेह मुझे संभाल सके।"

पति की बात सुनकर शशि मंत्रमुग्ध हो गई। उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उसे आज जीवन की वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई कि उसके पति ने उसके विचारों और उसकी भावना का स्वागत किया।